गल्प-कुसुमाकर

लेखक—

पुष्प-भिक्खु

॥ ॐ ॥

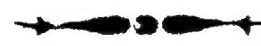
नमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

गल्प-कुसुमाकर



लेखक-

ज्ञातृपुत्र महावीर जैन-संघीय मुनि श्री फकीर-
चन्द्रजी महाराजका चरण धूलिकण
"पुष्फ भिक्खु"



प्रकाशक—
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन (गुजराती) संघ
नम्बर २७, पोलोक स्ट्रीट
कलकत्ता।

वीराब्द २४६५ ⎫ प्रथम संस्करण १००० ⎧ सन् १९३७
विक्रमाब्द १९९४ ⎭ ⎩ मूल्य ॥=)

प्रज्ञातव्य

ज्ञातपुत्र महावीर प्रभु तत्त्व उपदेशके अतिरिक्त सर्वसाधारणमें भव्य आत्माओंको आत्माभिरमणमें तन्मय करनेके लिये धर्म-कथाओंको भी सुनाया करते थे। उनके उपदिष्ट चार अनुयोगोंमें धर्म-कथाओंके सूत्रोंको प्रथमानुयोग कहा है। जिस प्रथमानुयोगसे साधक आत्म-साधनामें आशासे अधिक बोध और समाधि पाथेय प्राप्त कर सकता है. और उस प्रतिबोधसे रत्नत्रयमें पुष्टि पाकर वह मुमुक्षु अपने आत्माको अहिंसा, संयम और तपमें स्थिर तथा शुद्ध उपयोग भाव प्राप्त करता है।

परदेशी राजा जैसे क्रूर प्राणीने तो केशी स्वामीके छोटे-मोटे उदाहरणोंको सुन-सुनकर अत्यधिक शिक्षा ग्रहण की थी, यहांतक कि वह अपनी हठ और कुटेवें छोड़कर आर्य-जैन बन गया था।

महात्मा बुद्ध भी बहुतसे लोकोंमें युक्तिपूर्ण कहानियां सुनाकर जनतामें अहिंसाका खूब प्रचार करते थे, और संसारका त्रिताप मिटानेकी इसी साधनसे भरसक चेष्टा करते थे।

पहले समयके बहुतसे राजा इस प्रकृतिके भी थे कि उन्हें जो कोई नई कहानी सुनाता था उसे वे खूब पुरस्कार देते थे। उस समयके बहुतसे कहानीकार अपनी कहानियोंके बलसे बहुतसे राजाओंको सच्चरित्री तक भी बना देते थे।

आजकल भी इस कहानी युगमें कोई विरल ही देश और समाचार पत्र बचा होगा कि जिसमें कहानीके रूपमें किसी न किसी इप्सित विषयपर कुछ न कुछ प्रकाश न डाला जाता हो। यहांतक कि लोक भी अधिकतर सबसे पहले कहानी ही पढ़ते हैं. और कहानीके भावके अनुसार उनका मन भी उधर ही झुक जाता है। वास्तवमें कहानीमें कुछ ऐसा ही जादू है कि—जिससे मनुष्यकी भावना कहींसे कहीं पहुंच जाती है। यदि कहानी नव रसोंसे पूर्ण हो तो मनुष्य रोये या हँसे विना न रहेगा। कहानी-सम्राट् प्रेमचन्दजीकी कहानियोंने तो यह सिद्ध कर दिखाया है कि किसी पतित देश-समाज और जातिको जागृत करके उठाना हो तो उनके सामने जीती-जागती चित्ताकर्षक कहानियां भी साक्षात् रूपमें खड़ी की जायँ।

परन्तु अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि—हमारी व्यापारकला प्रधान जैन समाजमें इस प्रकारकी कहानियोंका प्रचार कहानी-पुस्तकों और समाचार-पत्रों द्वारा बहुत ही कम होता है। इस विषयमें और समाजोंमें तो खूब ही ऊहापोह चल रहा है। मगर अपनी इस सुस्त और प्रसुप्त समाजमें तो इसका कहीं ज़िकर तक भी नहीं किया जाता।

यही कारण है कि—मैंने यह "गल्प-कुसुमाकर" नामक पुस्तक लिखकर इसके द्वारा अपनी समाजमें इस ओर रुचि पैदा करनेकी मानो एक अपील-सी की है और साथ-साथ उन महापुरुषोंका अनुकरण भी करनेकी चेष्टा की है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह भी बता देना आवश्यक प्रतीत होता

है कि मैंने कभी इससे पहले कहानीकी कोई पुस्तक नहीं लिखी है। न कभी कोई हिन्दीकी परीक्षा ही दी है। जिसके कारण शायद उच्च कोटिके हिन्दी लेखकों और पाठकोंको मेरी यह त्रुटिपूर्ण भाषा खटके बिना न रहेगी। परन्तु फिर भी मैंने इन भाषा दोषोंके रहनेपर भी अपने भावोंको न रोककर समाजके नेताओंका लक्ष्य समाजकी अनेक अत्यावश्यक बातोंका अनुभव करानेके लिये इस पुस्तकको लिखा है और इस विषयमें मैंने जो कुछ परिश्रम किया है उसमें मेरे अन्तेवासी शिष्य 'सुमित्त' भिक्षुका अनुरोध भी एक मुख्य कारण है, इन दो निमित्तोंसे भाषा दोषकी कुछ उपेक्षा-सी भी की गई है। इसके अतिरिक्त इनकी बनाई हुई कई कहानियां इस पुस्तकमें सम्मिलित हैं जो कि शिक्षाप्रद और भावपूर्ण तथा सारग्राही हैं। और मैंने कई काल्पनिक कहानियां भी लिखी हैं जिनका आशय मात्र देश, समाज और जातिका उत्थान तथा सुधार ही है। इसमें अनाथी मुनिकी कहानी श्रीराम-चरित उपाध्यायजीकी लिखी हुई है। उक्त महानुभाव हिन्दी-भाषाके विश्वमें एक अद्वितीय उद्भट लेखक हैं, इनकी कहानी अत्युपयोगी और सौत्रिक होनेके नाते आदरका स्थान प्राप्त है और दोनों महोदयोंका साथी लेखकके नाते पूर्ण उपकार मानता हूं।

इस प्रकार यह त्रिवेणी संगम इस कहानी युगमें आधुनिक नव-युवक जो कि अपनेको कहानीके रसिक समझते हैं तथा कहानियोंके द्वारा जो आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शिक्षा लेना चाहते हैं उन्हें यह 'गल्प-कुसुमाकर' सन्मार्ग प्रवृत्ति, सादा चलन, भ्रातृ-भावना,

देश-सेवा, अछूतोद्धार, विद्या प्रचार और साम्यवादकी शिक्षा दिये विना कभी न रहेगा। अतः मुझे यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि इस पुस्तकमें कहानियोंके बहानेसे क्या-क्या उपयोगी अंश समझाया है।

यदि हमारे हिन्दी पाठकोंने इससे कुछ भी लाभ उठाया और अपने उज्ज्वल चरित्रका संगठन और मनोबलका विकास किया तो यह प्रवृत्ति और परिश्रम सफल समझा जायगा और भविष्यमें इसी प्रकारकी कुछ और भी सेवा करनेका प्रयत्न किया जायगा।

प्रार्थी—

ज्ञातपुत्र महावीर जैन संघका लघुतम सेवक

—'पुप्फ भिक्खु'।

विषयानुक्रमणिका

उपादेय और पाठ्य पुस्तकें



नव पदार्थ ज्ञानसार	।)
आगम शब्द प्रवेशिका	=)
उत्तम प्रकृति	-)
गल्प-कुसुमाकर	॥=)
बारामासा नेम राजुल	=)
बंगाल विहार	अमूल्य
श्रावक व्रत पत्रिका	"
स्वतन्त्रताके चार द्वार	"
महावीर निर्वाण और दिवाली	"
पर्य्यूषण पर्व्व	"
शान्ति प्रकाश	"
महावीर-भगवान्	"
मनुके उपदेश	"

नोट—अमूल्य पुस्तकोंके लिये ॥=) के टिकिट आने चाहिये।

गल्प-कुसुमाकर

क्षमा प्रार्थना

'उसने अपने भाईको बख्श दिया'

[१]

हमारी कहानीका सम्बन्ध पुराने रूपवासकी उस मोड़दार गलीसे है, जिसमें अबसे ४० वर्ष पहले ऊधव और माधव नामके दो छीपी भाई रहते थे। ये बड़े परिश्रमशील और कमाऊ थे। मगर ऊधव प्रकृति का क्रूर था, लेकर देना नहीं जानता था, वैर बदला लेनेमें कर्मठ और नृशंस था। वह किसीको क्षमा करना नहीं जानता था। नौकरी न देना या कम देना नया नमूना बताकर पुराना या रद्दी माल गाहकके गले मढ़ देना तो कोई इससे ही सीख ले, 'संसार भरका धन मेरे घरमें आ जाय' यही इसकी इच्छा रहती थी।

माधव प्रकृतिका सरल, हाथ और ज़बानका सच्चा, मनका साफ और नाड़ेका जितेन्द्रिय था, भाईके आचरणोंपर सदा असंतुष्ट रहा करता था।

वह सदैव उसे समझाता था कि पाप, झूठ, चोरी, ठगी, बेईमानी, कलहसे पैसा पैदा करके दनादन दान पुण्य करने, ब्रह्मभोज, गंगोज, सदाव्रत साधु-भोजन देनेकी अपेक्षा पापको छोड़कर सन्तोषसे श्रमी जीवन बनाये रखना लाख दर्जे अच्छा है। गोलेकी चोरी और सुईका दान मुझे पसन्द नहीं। अत्याचारसे कमाकर दान करना एक प्रकारका बज्रलेप पाप है। इधर गरीबोंके गले काटना और उधर सदाव्रत लगाना अपने भविष्यमें मानों शत्रुका बल बढ़ाने जैसा है। मैं इस पाखण्डसे नाम पैदा करना गुनाह समझता हूं। इसीसे जब आप सन्ध्या करते हैं तब लोग यह आवाज़ कसते हैं कि तालाबका भगत (बगुला) बैठा है। मेरी मानो तो अनीति और अन्याय छोड़ दो, बनावटी माल देना तथा धोखा देना छोड़ दो, यही परमात्माकी सच्ची साधना है। मैं परमात्माका नाम मुंहसे नहीं रटता, मैं तो चरित्रसे शुद्ध रहना पसन्द करता हूं। लालटेनका नाम लेनेसे कभी घरका अन्धकार न भागेगा। बाहरसे शीशी धोकर साफ किया चाहे तो क्या बनता है।

मगर ऊधव पत्थरका बाट था, इसे एक न लगती थी। माधवकी उपदेशपूर्ण शीतल वाणीसे भी आग बबूला हो उठता। खीजकर असभ्यतासे पेश आता। एक दिन बातकी बातमें दोनों भाइयोंमें इसी कारण हाथा-पाई तककी नौबत आ गई। माधवको भारी चोट आई, बड़े भाईसे मार खाकर भी वह आक्रमण न करना चाहता था। जनताको परिचय दे दिया कि ईश्वरको न्यायकारी और दण्ड देने-वाला बतानेवाले मनुष्योंके ये काले कारनामे आपकी आंखोंके सामने

हैं। परमात्माको आगे रखकर इस प्रकार अनीति करना कोई इनसे सीख ले। इसीलिये मैं इस ढंगसे परमात्माको नहीं मानता। जिसकी पवित्र सृष्टिमें लोग दिन दहाड़े उसीके नामपर डाके डालें और वह सब कुछ जान बूझकर तथा सर्वशक्तिमान् होकर भी कुछ न कहता हो यह कितनी विचारणीय बात है।

ऊधव भड़क उठा और बोला कि माधव! जब तू नास्तिक होकर ईश्वरको सबके सामने ईश्वरीय न्यायसे न डरकर उसे कोसता है तब तू मेरा भाई नहीं दुश्मन है। तेरा मुंह देखनेसे पाप लगता है। जा अपनी घरवालीको लेकर निकल जा। इस घरमें अब तुझे स्थान न मिलेगा। परमात्मा तुझसे दर-दरकी खाक छनवायेगा और तब तेरी अकल ठिकाने आयेगी। नास्तिक कहीं का!

[२]

माधव राजगढ़ मंडीमें मजदूरी करने लगा है। यह २॥ मन की बोरीको ऊपर फैंककर ढांग चिन देता है। रातको चौकीदारी भी किया करता है। मगर अभी इसके पास इतनी पूंजी नहीं हो पाई है कि जिससे यह ठप्पे लाकर श्रमजीविओंमें से नाम कटाकर अपनी रंगसाज़ीका काम आरंभ कर दे। इसीलिये हरदेवी रोज़ कहती है कि—मुझे भी साथ ले चला करो जिससे दुगने पैसे आने लगें।

माधव—हरदेई! जहांतक जीवित हूं तुझे यह दासी-कर्म न करने दूंगा। मैंने तेरा हाथ गुलामी करानेके लिये नहीं पकड़ा था। मैं तुझे स्वर्गकी देवी बनाना चाहता हूं। जैसे-तैसे इस

साल तो चुप हूं। पर कुछ पासमें होनेपर अगले ही वर्ष ठप्पेलाकर यहीं दुकान खोलूंगा और फिर देखना मेरी कैसी दुकान चलती है। मुझसे प्रवीण छींपी यहां कोई नहीं है। एक ही सालके बाद तुझे फिर तो चांदीसे लाद दूंगा। यह सब अपने दमपर और कामके बलपर करके दिखला दूंगा। पर ऊधवकी तरह परमात्माका नाम कभी न लूंगा। आज-कल बहुतसे उसका नाम जपनेवाले धूर्त, पाखंडी, बगुलाभगत, दीन-पीड़क होते हैं, और होते हैं परले सिरेके बेईमान। परन्तु मैं तो चोरी, जारी झूठ, कपट कभी न करूंगा, न किसी दीनको ही सताऊंगा। चाहे मेरी खाल ही क्यों न उधड़ जाय। चाहे मैं भूखा ही क्यों न मर जाऊं सुना हरों! हरदेईने मानो सिर हिलाकर उसके प्रस्तावका अनुमोदन कर दिया। माधवका मस्तक गर्वसे ऊंचा हो गया। हरदेईको एक बार सन्मानकी तथा स्वाभिमानकी दृष्टिसे देखकर तथा सिर हिलाकर यह कहता हुआ प्याज और जुवारकी रोटी खाने लगा कि जब वे सुखके दिन आये और चले गये तब ये भी न रहेंगे।

[३]

माधवसे नगरखेड़ने कहा कि ज़रा हाथकी हथेली तो फैलाओ। माधवने ज्योंहीं हथेली फैलाई उसने तुरन्त ५०) रुपये रखकर कहा कि—जा अलवरसे ठप्पे ले आ और अपनी दुकान कर ले माधव!

माधव—और ये रुपये कहांसे पाये हैं? क्या जुआ तो नहीं खेला था!

नगरखेड़—सर कट जाय, इसकी पर्वाह नहीं। मगर माधव!

कापतेनमें जाकर यह नीच कर्म कभी न करूंगा। अपनी भैंस बेचकर लाया हूं। तेरे जैसे पहलवान पल्लेदारी करें। दोस्त! यह मुझसे न देखा गया। जा आजकी गाड़ीसे चला जा। सामान ले आ। सरदी ऊपरसे आनेवाली है। कुछ गिलेफ बनाने लग जा। मुझे अब दूध नहीं भाता था माधव! इसीसे भैंस बेच-कर दाम खड़े कर लिये। यदि इन रुपयोंके अतिरिक्त मित्रके लिये शरीरकी आवश्यकता पड़े तो उसे भी हँसते-हँसते न्यौछावर कर दूंगा। मुझे निरा मोची ही न समझना कुछ मनुष्यता भी सीखी है। जिस धनसे मित्रोंको और घरके भाइयोंको लाभ न पहुंचे और शत्रुओंको डाह न पैदा हो वह धन नहीं, ठीकरी है माधव! जा आज ही! बस और कुछ मत बोल। यह कह नगरखेड़ अपने झोंपड़ेकी ओर चला गया।

[४]

धर्मशालामें व्याख्यान सुनकर माधव हकीमजीवाली गलीसे बाहर हो गया। कुछ देर सोचकर त्रिपोलिया बाजारकी तरफ चला। वहां दरवाजेमें घुसकर शिव मंदिरके पास आकर खड़ा हो गया। ज्योंही नीची दृष्टि की कि एक रेशमी रूमाल किसीकी जेबसे निकल कर गिर पड़ा। माधवने उसे चट उठा लिया जिसके एक सिरेपर एक गांठ लगी थी। उसने जरा आगे बढ़कर उनको मुजराकरके उन्हें देने लगा। सर्दार बलवन्तसिंहने रूमाल देखकर अपने काबू कर लिया और माधवको कोतवालीमें ले जाकर खड़ा कर दिया। इसके बाद थानेदारने यह मामला माल अफसरके यहां पेश कर दिया।

माल अफसर—तुम्हारी डिब्बीमें कितनी गिन्नियां थीं ?

बलवन्तसिंह—जी, २५ थीं।

माल अफसर—अब कितनी हैं ?

बलवन्तसिंह—जी, १० हैं।

माल अफसर—१५ कहां गईं ?

बलवन्तसिंह—मुझे मालूम नहीं। इसने मुझे रूमाल दिया है शायद १५ इसने निकाली हैं।

माल अफसरने खजानेसे १५ गिन्नियां मँगवाकर उस डिब्बीमें डालनी आरम्भ कीं। मगर पांचसे अधिक गिन्नियां उसमें न आईं।

माल अफसर—सर्दार बलवन्तसिंह! इस डिब्बीमें जब ५ से अधिक दीनार ही नहीं आते, तब बताइये यह डिब्बी आपकी क्योंकर हो सकती है। जाइये, आप अपनी चीज कहीं अन्यत्र खोजियेगा।

अपना-सा मुँह लेकर बलवन्तसिंहके चले जानेपर हाकिमने कहा कि तुमने इसका गिरा हुआ रूमाल इसको क्यों दिया था ?

माधव—सर्कार! पाई चीज पराई होती है, अपनी नहीं। इसके अतिरिक्त आज महात्माओंसे चोरी न करने और असत्य न बोलनेकी जो प्रतिज्ञा ली थी भला उसे क्योंकर तोड़ देता। मेरे लिये इन दो प्रणोंपर अटल रहना ही परमात्माका जाप करना है। इनको ही परमात्माका रूप समझता हूं, और पाखण्ड मुझे नहीं आते। माल अफसरने उसपर प्रसन्न होकर वे १० गिन्नियां उसको सत्य बोलनेके पुरस्कारमें धन्यवाद देकर अर्पण कर दीं।

[५]

आज माधवको मानो राज मिल गया है। शहरमें उसकी शाख जम गई है। वह शाख अपने साथ लाख भी ले आयी है। अतः आज उसे अपार प्रसन्नता है। न जाने कितने ठप्पे लिये हैं, और बहुत-सी चांदी भी मोल ली है। रातको ही चलकर राजगढ़ आ गया। हरदेईसे बोला कि आज तुझे चांदीसे मढ़ देना है, यह कह सब हाल बता दिया। हरदेईने कहा, मुझे गहने न चाहिए। स्त्रीका रूप उसकी सुशीलता है। अपनी दूकान बनाओ। आपकी शाख जम गई तो समझो कि मैंने लाख गहने भर पाये।

माधवने नगरखेड़को बुलाकर उसका सब रुपया दे दिया तथा असली हाल उसे समझा दिया, और उसे बताया कि हमारा सत्य ही भगवान है। उसका पूर्ण आचरण करना ही उसकी पूजा करना है। अतः अब मैं तो छींपीकी दूकान खोलूंगा। मगर तुम भी अच्छी-सी सलेमशाही जूतोंकी दूकान खोल लो, और मेरे पासवाली ही दुकान ठीक रहेगी। उससे मैंने सब कुछ तय कर लिया है।

माधवने इस साल बहुतसा रुपया कमा लिया है और अपना मकान पक्का बनवा लिया है। अब इसकी दूकानमें हजारोंका माल है। इसने कई गरीब भाइयोंकोनौकर रख छोड़ा है। रंगाई और ठिकाई यह खद्दरकी करने लगाहै। विलायती कपड़ा रंगना इसने कतई छोड़ दिया है। स्यौधानसिंहके फैशनके साफ़ेकी रंगाई ७) दर थी, मगर इसे विदेशीका मोह न रहा। नगरखेड़ भी अपना कोठा बनवा रहा है।

एक दिन सांझ होते-होते एक आदमी माधवसे आकर मिला—माधवने पूछा तुम्हें यहां किसने भेजा है ?

आगन्तुक—जी, ऊधवने भेजा हैं।

माधव—ऊधवने। क्या सुन रहा हूं। ऊधवने भेजा है ? मगर क्या काम है। किस लिये भेजा है ?

आगन्तुक—जी ! वह बीमार हैं, अन्त समय आया हुआ है। तुम्हारे विना तड़प रहा है। यदि उसे अपनी जरा सूरत दिखा आओ तो वह सुखसे मर सकेगा। उसने मुझे इसीलिये भेजा है।

[६]

माधव आज पूरे ३५ सालके बाद घर आया है। साथमें पांचों लड़के और चारों लड़कियां भी हैं। घरमें घुसते ही माधवके साथ साथ सबने ऊधवके चरण छुए। माधव सिरहाने बैठकर सिरपर मक्खनकी मालिश करने लगा। हरदेई पंखा झल रही थी। सब लड़के-लड़कियां चारों ओर मेंहदीके वृक्षकी तरह प्रसन्न मुख खड़े थे और ताऊकी ओर एकटक देख रहे थे। इस रचनाको देखकर ऊधवकी आंखें सजल हो आईं। गला रुंध गया। माधवने गंगाजल मुंहमें छोड़ा। उसे एकदम सुध आई और कुछ हिम्मत बांधकर माधवके हाथको अपने हाथमें लेकर बोला कि—माधव ! कई दिनोंसे ऐसा दिखाई पड़ता है मानों भींतसे नीचे खटमल उतर कर खाटमें जमा होने लगे हैं, और मेरा सब खून पी गये हैं। यमके दूत भालोंमें कपड़े और जेवर लटका कर धमकाते हैं। मकानकी छत गिरती दिखाई पड़ती है। खाटको कुत्ते खींच-खींचकर मानो कोयलेकी खानमें गिराने

ले जा रहे हैं। इस दोषको मिटानेके लिये ब्रह्मभोज, गोदान, तुलादानादि सब कुछ किया तब भी शान्ति नहीं मिल रही है। मगर भाई माधव! तेरी सूरत देखकर बहुत कुछ शान्ति आ गई है।

इतनेमें लाला शंकरलाल आ गये और अपने हाथकी बही रखकर बैठ गये। उन्होंने माधवके सामने ६००० रुपयोंके नोट ऊधवके कहनेसे रख दिये। मकानके दो कबाले उसे दे दिये। ऊधवने माधवसे कहा—भाई, ३५ वर्षके ३०० रुपयोंका इतना व्याज दे रहा हूं। तेरा जो हक़ मारकर तुझे निकाला था उसे अब यथा शक्य वापस कर रहा हूं। अब अन्त समय आ गया है। अतः तुझसे बिदा लेनेसे पहले माफी चाहता हूं। माधवकी आंखें डबडबा आईं और अपने भाईको तुरंत बख्श दिया। ऊधवकी जीवन लीला सुखसे शान्त हुई। मगर माधवकी कीर्ति चांदकी चांदनीकी भांति तमाम जगत्‌में फैल गई। छीपी संसारमें अब भी ऐसे नर रत्न भरे पड़े हैं। इसीसे गुजरातमें इस जातिको भावसार कहते हैं।



प्रचारका निमंत्रण

[१]

पेशावरसे कुछ आगे चलकर सरहद आ जाती है। आजकल वहां पठानोंकी बस्तियां हैं। इसी प्रदेशको २५०० वर्ष पहले अर्ध-कैकेयी देश कहते थे। पहले वहां भी लोग मनहूस और जड़प्राय थे। उनमें लूट-खसोट मार-काटकी बुरी आदतें अधिक पाई जाती थीं। उस समय श्वेताम्बिका नगर यहीं कहीं आसपास ही था। जो परदेशीकी मुख्य राजधानी थी। परदेशी राजा था। उसमें सब गुण नामसे बाह्य राजा होनेके पाये जाते थे।वह प्रजासे लांच खाकर भी उन्हें खुश रखनेकी चेष्टा रखता। शिकारकी कुटेव तो उसकी जन्म घुट्टीमें ही पड़ गई थी। इसके अतिरिक्त वह हरएक पशुको पकड़ कर तौल लेता था। फिर मारकर भी तौलता और लोगोंको बताता कि दोनों अवस्थाओंमें वजन एक-सा ही है। यदि जीव होता तो उसके निकलनेपर कुछ घट जाना चाहिये था। मगर घटा-बढ़ा तो कुछ

नहीं। इससे साफ़ जाहिर होताहै कि जीव नहीं है। कभी उसे यह ख्यालआता कि शायद मनुष्यके शरीरसे जीव निकल कर शरीर घट सकता हो। इसकी जांच करनेके लिये वह चोरोंको गला दबाकर मार डालता, फिर तौलता और लोगोंसे कहता कि मनुष्यमें भी जीव नहीं है शरीर और आत्मा एक ही बात है। यह खोज ही उसकी दिन भरकी कमाई थी। मगर उसे शरीर और जीवको अलग सिद्ध करनेवाला कोई गुरु नहीं मिलता था।

उसका एक चित्त नामका भाई भी था। क्या खूब जोड़ी मिली, राजा परदेशी और उसका प्रधान चित्त। महाराजा परदेशी चित्त प्रधानकी बातोंका ढंग देखकर खुश हो गया। वह उसीपर विश्वास रखता था। चित्तने भी सारा राज्य संभाल लिया। प्रजामें कभी अशान्ति नहीं आने देता था। राजाके आये दिनोंके गुप्त अत्याचारोंसे यद्यपि प्रजा कभी-कभी परदेशीसे असन्तुष्ट भी हो जाती थी तथापि चित्तके अनुकूल बर्तावसे क्रान्तिके बादल उठकर फिर रह जाते। क्योंकि चित्त अपनी चातुरीसे उनके आंसू पोंछनेमें क्षणमात्रका भी विलम्ब न करता था। लोभान्ध परदेशी जो टैक्स लगाता चित्त उतना ही धन अपनी गिरहसे राजकोषमें भर देता, पर प्रजाके कानों तक आंच न आने देता। यही कारण था कि प्रजा चित्तको अपना आराध्य देव मानने लगी।

[२]

कालकी कराल गतिसे अब एक छोटा-मोटा ग्राम रह गया है। मगर पहले तो इसे महानगर या सावत्थीके नामसे पहचानते थे।

उस समय जितशत्रुकी यह राजधानी थी। जितशत्रु परदेशीका परम मित्र था। प्रतिवर्ष अच्छी-अच्छी वस्तुएं चित्त प्रधान द्वारा भिजवाया करता। सदाकी भांति इस वर्ष भी चित्तके हाथों अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर उपहार भेजे हैं। इसके अतिरिक्त राजासे और भी राजसम्बन्धी कार्योंमें सम्मतियां मांगनेके हेतु भी उसे भेजा था। चित्तसे मिलकर जितशत्रु प्रसन्न हुआ। और सड़कके पास सतमहला उसके रहनेको दिया।

उसके रहन-सहनका सब उचित प्रबन्ध कर दिया। चित्तको भी वहां आवश्यक कार्योंके लिये कुछ दिन रुकना पड़ा। उसकी चातुर्यभरी प्रकृतिने जितशत्रुके अन्तःकरणमें घर कर लिया था, और इसी कारण कार्योंके समाप्त होनेपर भी चित्तको राजाने अधिक दिन रख लिया।

[३]

कोष्ठक वनमें मानव मेदिनीकी बड़ी भारी भीड़ एकत्र हो गई है। जन-समुदाय महर्षि केशी स्वामीका महत्वपूर्ण व्याख्यान सुन रहे हैं। वे मुनि दार्शनिक और तार्किक हैं। जन-समुदायका मानसिक संशय अपने ज्ञानसे तुरन्त ताड़ जाते हैं, और उसका निराकरण करनेमें एक क्षणका विलम्ब नहीं होने देते। यही कारण था कि वैराग्यपूर्ण वाणी सुनकर अनेक पुरुषोंको आर्हती दीक्षा लेनेका प्रसंग अपनी आंखों चित्तने स्वयं देखा और अवाक् रह गया। चित्तके मनपर अचल प्रभाव पड़ा, और हाथ बांधकर मुनिराजसे प्रार्थना की कि श्रमण! इस शैलीका उपदेश अपने जीवनमें

आज ही सुन रहा हूं। आपके बताये हुए सिद्धान्तकी सच्चे दिलसे अनुमोदना और स्वागत करता हूं। मगर आपकी तरह इस मुनि धर्मका पालन करना मेरी शक्तिके बाहर है। जिस प्रकार इस मुनि-मंडलने सर्वथा परिग्रह त्यागनेमें उदारता दिखाई है। इतनी तैयारी मैं अब तक नहीं कर पाया हूं, और जहां तक उस क्षेत्रको साफ न कर लूं वहांतक पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत स्वीकार करता हूं।

* * *

चित्त—भगवन ! आज अपने देशकी ओर विदा हो रहा हूं। चित्त तो नहीं चाहता कि आपके चरणकी सेवा छोड़कर अपने देशको चला जाऊं। पर संसारका माया-जाल भयंकर और प्रबल है। क्या करूं, विवश होकर जाना पड़ रहा है। पर आपसे सविनय प्रार्थना है कि मेरे उस देशको भी अपनी चरण धूलिसे पवित्र करें। तीन बार यही प्रार्थना की और बोला कि आप जैसे महात्माओंकी वहां बड़ी भारी आवश्यकता है। अगर आप उस देशको जगा दोगे, गिरेको उठा दोगे, अन्धकारसे उद्योत कर दोगे तो तीर्थंकर गोत्रकी प्राप्ति दूर नहीं, पर श्रमणकेशी मौन रहे। परन्तु इधर चित्त भी विचलित न हुआ और चौथी बार भी वही प्रार्थना की।

केशीश्रमण— चित प्रधान ! हरे-भरे बागमें क्या किसीका मन वायु-सेवनके लिये न करेगा? पर यदि प्राणी भक्षक भील वहां रहते हों तो कौन उससे बचना न चाहेगा ? तुमही कहो। यही हाल आपके परदेशीका है जिसके कोहनी तक खूनमें हाथ सने रहते हैं उसके राज्यमें साधु जाकर अपना स्वतंत्र उपदेश कैसे कर सकता है।

तुम्हारे कथनके अनुसार जब वहां और धर्मी लोक बसते हैं। वे धर्ममें जब दत्तचित्त हैं अतः उनका और तुम्हारा खयाल रखकर आपकी प्रार्थनाको स्थान दिया जाता है, और उसका पापसे उद्धार करनेके लिये किसी उचित समयपर आऊंगा ही !

[४]

चित्त अपनी सेनाके साथ स्वदेशको जानेका प्रयाण कर रहा है। रास्तेमें सफरमैंना सड़क बनाती चल रही है। विषम मार्गको सम बना देती है, नदियोंके पुल बना दिये हैं। भयंकर वनोंमें छोटे-छोटे घोष बसाये गये हैं। यहां ग्वाल-बाल तीनों वक्त समायिक करते हैं, और पशुपालन करनेमें सदैव तत्पर रहते हैं। बीस-बीस मीलके अन्तरपर दो-दो चार-चार चट्टियां बसाई हैं। ठीक अपने नगर तक यह प्रबन्ध किया है। सब घोषों और बस्तिओंके पटवारी और नम्बरदारोंसे कह दिया है कि इस रास्तेसे महात्मा केशीश्रमण आवेंगे। उनका उपदेश सुना करना। उन्हें दूध, दही, रोटी और प्राशुक जल अवश्य प्रदान करना, इसमें आपको अनंत पुण्यकी प्राप्ति होगी। मुनिराजोंको सुख देनेसे अवश्य अविचल सुखका प्रतिफल लीलामात्रमें ही मिल जाता है। देखना याद रहे, भूल न जाना।

अन्तमें अपने नगरके बाहरवाले मृगवनमें आकर बागवालोंको कहा कि देखना, कुछ हो समयमें मुखपर वस्त्र लगाये यहां एक मुनियोंका समुदाय आवेगा। वे सब मेरे धर्मगुरु हैं। संख्यामें पूरे ५०० हैं। उन्हें रहनेके लिये अन्दरवाली महाकाय कोठी दे देना। उनको तख्त, चौकी, पुराल, कसेर आदि बिछानेके लिये देना।

तदन्तर उनकी वन्दना करना; सब आवश्यक वस्तुएँ देना तथा उनका उपदेश सुनना और उनके पधार जानेकी सर्वप्रथम सूचना मुझे ही देना। देखना, कोई बात भूल न जाना, भला ?

[५]

बलोचिस्तानसे चार घोड़े वहांके एक सर्दारने भेटमें भिजवाये हैं। बड़े सुन्दर हैं, लक्षण-सम्पन्न हैं। चित्तने कहा कि राजन, क्या ही अच्छे और जातिमान घोड़े हैं। जी चाहता है कि इन्हें रथमें जोतकर वायु सेवन करनेके अर्थ आपको वनमें ले चलूं। इनकी गति मतिपर आप आशासे अधिक प्रसन्न हो जाइयेगा। आज्ञा हो तो इन्हें अभी रथमें जोत लाऊं। राजाने जरा मुस्कराकर 'हां' का इशारा कर दिया। चित्त तुरन्त घोड़ोंको रथमें जोतकर ले आया। राजाको रथमें बिठलाकर घोड़े तो मानो हवासे बातें करने लगे। १० बजे तक वनका बहु भाग तह करके मरुस्थलके विजन प्रदेशमें एकदम आ गये। राजाने कहा, कहां लिवा लाये ? यहां तो कोई पानीका जलाशय भी नहीं दीख पड़ता। बड़ी प्यास लगी है ? मारे प्यासके गला सूखा जा रहा है ? मेरी तो यह सम्मति है कि राजन्! मृगवनमें किसी तरह पहुंचना चाहिये यह चित्तने कहा।

* * * *

व्याख्यानमें बड़े मधुर शब्दोंका प्रयोग कर रहे हैं। मानों हजार कोकिलायें मिलकर एक साथ कूक रही हैं। इसके बाद

श्रोतावर्ग अपने-अपने मनके संदेह पूछ-पूछकर निवारण कर रहे हैं। कई मुनिराज अध्ययनमें लगे हुए हैं।

राजा—इन मुनियोंने मेरा बाग क्यों रोका है?

प्रधान—ये महान आत्माएँ हैं। आत्मा और शरीरको अलग-अलग माननेवाले हैं। उपदेश बड़ा शिक्षाप्रद है। चलिये आपका उनसे वार्तालाप हो जाय तो आपका प्राचीन संदेह भी निकल बाहर हो।

*   *   *   *

राजाने मुनिके संगसे नास्तिकताको छोड़ दिया और श्रमणोपासक होकर अपने सात हजार गांवोंकी आमदनीके चार भाग कर दिये, चौथा भाग दानमें लगाता है। सुपात्रोंको सब कुछ दिया जाता है। नगरके चारों द्वारों पर चार सत्रागार लगाये हैं विद्यालय, चिकित्सालय, अनाथालय और उदासीनाश्रम—ये चार सदाव्रत खोले हैं। जिनमें मनुष्य मात्र और प्राणी मात्रका पालन लाखोंकी संख्यामें होता है। यह सब यश चित्त प्रधानको प्राप्त है। उसीने इस देशमें मुनियोंके आनेके लिये सरल मार्ग बना दिया था। जिससे एक महान अधम आत्माको नरक जाते-जाते स्वर्गकी प्राप्ति हो गई। यह अमर यश और पुण्य चित्त प्रधानके हिस्सेमें हैं।

प्रचारका निमन्त्रण बौद्ध साहित्यसे

अनाथ पिंडिक गृहपति राजगृहकके श्रेष्ठीका बहनोई था। किसी कामके लिये राजगृह आया। पर राजगृहक श्रेष्ठीने बुद्ध

सहित संघको निमन्त्रण दे रक्खा था। चावल पकाओ, दाल बनाओ, खिचड़ी रांध लो, तेमन सिझाओ; इत्यादि कार्य नौकरोंसे करवा रहा था। इसीसे अनाथपिंडिककी कोई बात न पूछी। वह मनमें सोचने लगा, शायद घरमें कोई विवाह है या राजाको निमन्त्रण दे रक्खा है, कामसे फुरसत नहीं। कामसे निपटकर कभी तो कुशल पूछने आवेगा ही।

राजगृहक भी नौकरोंको सब काम बताकर अनाथपिंडिकके पास आकर बैठ गया और बोला, क्षमा करना। कल बुद्धका संघ सहित निमंत्रण है। अतः काम धन्धेसे फुरसत नहीं मिली। इसी से आपका ठीक स्वागत भी नहीं कर सका।

तो भणे, बुद्ध कहां ठहरे हैं ?

राजगृहक—सीत बनमें।

अनाथपिंडिक—क्या इस समय उनके पास जाया जा सकता है ?

राजगृहक—यह समय जानेका नहीं है।

* * *

इसे नींद न आती थी, रह रहकर चौंक पड़ता था। रातके तीन बजे ही सबेरा समझकर उठ खड़ा हुआ। रात अन्धेरी थी। बस्तीसे बाहर जाकर कुछ डरसा गया। परन्तु शिवक यक्ष द्वारा धीरताके शब्द सुनकर प्रसन्न हुआ और सीत बनमें जा पहुंचा।

बुद्ध भिनसार कालमें टहल रहे थे। दूरसे ही सम्बोधन किया कि आ सुदत ?

बुद्ध मेरा नाम लेकर बुला रहे हैं। मनमें फूला न समाया और बोला कि भन्ते, नमन करता हूं।

सुखसे नींद तो आई ?

समाधि प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है। जो शीतल है, दोष रहित है, काम वासनाओंमें अलिप्त है, निर्भय है, उपशान्त है, अतृष्ण है वह सुखसे सोता है। यह कह आनुपूर्वी कथा कह सुनाई। इसकी समाप्तिपर अनाथपिंडिक बुद्धका उपासक होते समय बोला कि मैं बुद्ध, संघ, धर्मकी शरणमें आता हूं।

इसके बाद अनाथपिंडिकने अगले दिनके लिये बुद्धको निमंत्रित किया, महात्मा बुद्धने उसे मनसे स्वीकार कर लिया।

† † †

राजगृहक—अनाथपिंडिक !

मैंने सुना है कि आपने बुद्धको संघ समेत कलके लिये निमन्त्रित किया है।

अनाथपिंडिक—यह सत्य है।

राजगृहक तुम यहांके अतिथि हो। अतः तुम्हें खर्च देता हूं जिससे बुद्ध सहित भिक्षु संघके लिये भोजन तैयार कर सको।

अनाथपिंडिक—नहीं गृहपते ! मेरे पास खर्च है। जिससे मैं सब काम कर सकूंगा।

यही बात वहांके नैगम (श्रेष्ठी या नगर सेठ उस समयका एक अवैतनिक राजकीय पद था। इसी तरह 'नैगम' एक पद था जो श्रेष्ठीसे ऊँचा था) और मगध राज्यने भी कहा और सहायता देनेका

पूरा वचन दिया; मगर अनाथपिंडिकने उनसे भी यही कहा कि मेरे पास इतना खर्च है जिससे बुद्ध समेत संघको भोजन दे सकूंगा।

अगले दिन अनाथपिंडिकने बुद्ध सहित भिक्षु संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य, भोज्यसे सन्तर्पित करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर यह कहा कि भगवन्! श्रावस्तीमें वर्षावास करना स्वीकार करें।

सूने घरमें गृहपति! तथागत अभिरमण (विहार) करते हैं। यह बुद्धने कहा।

अनाथपिंडिक—समझ गया सुगत!

इसने सोचा कि पहले खूंटा और घुड़साल बनवाकर बादमें घोड़ा खरीदना चाहिये। इसी प्रकार सर्व प्रथम महात्माके लिये विहार बनवाऊँगा और फिर निमन्त्रण दूंगा, तब ही ठीक होगा। और उन्होंने खुद भी कहा है कि बुद्ध विहार विना नहीं रहते। ठीक है सुगत! मैं भी यही समझा।

अनाथपिंडिक गृहपति था, धनाढ्योंमें तथा व्यापारियोंमें सर्वोत्कृष्ट प्रामाणिक था। इसके इष्ट मित्र, उसके सहायक संख्यातीत थे। अपार धनी था। इसे इभ्यशेठका पद भी प्राप्त था।

अपना काम खतम कर लिया और अपने देशकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें इसने हरएक गांवके मनुष्योंसे कहा कि बुद्ध इस रास्तेसे आयेंगे। उसके लिये आराम बनवाओ, सदाव्रत लगाओ। उसके कथनानुसार बहुतसे लोगोंने उसकी आज्ञाका पालन किया, सब कुछ बनवा कर तैयार रख छोड़ा। मगर जो लोग धनिक नहीं थे, यह काम नहीं कर सकते थे, उनको अनाथपिंडिकने धन

दिया। अपनी तरफसे विहार बनवाये। इसने पैंतालीस योजन तकके रास्तेमें श्रावस्ती तक एक-एक योजनपर विहार बनवा दिये। बुद्धके लिये श्रावस्ती पहुंचनेका मार्ग इस प्रकार सुगम करके फिर सावस्ती आया।—(अट्ठकथा)

अनाथपिंडिक गृहपतिने श्रावस्ती आकर नगरके चारों ओर नजर दौड़ाई और सोचने लगा कि बुद्ध कहां निवास करेंगे। उनके निवास करने योग्य स्थान गांवसे अधिक दूर न हो, अधिक समीप भी न हो. दर्शनार्थी पुरुषोंके आने-जाने योग्य भी हो तथा वे सुगमतासे आ सकें, इच्छुक मनुष्य हँसी-खुशीसे पहुंच सकें, दिनको भीड़ कम रहती हो, रातको कोलाहलका शब्द न पहुंचता हो, आदमियोंकी गन्दी हवासे रहित हो। मनुष्योंसे एकान्त भी हो और हो ध्यानके योग्य। उसने इस गुणसे भूपित जेत राजकुमारका उद्यान ही देखा जिसमें ये सब गुण थे। निदान वहां जाकर जेतराजकुमारसे कहा।

आर्य्य पुत्र! मुझे आराम बनवानेके लिये उद्यान दीजिये।

आर्य्यपुत्र—क्रोड़ कंसारसे भी वह अदेय है!

गृहपति—मैंने आराम ले लिया।

आर्यपुत्र—तूने नहीं लिया। लिया या नहीं यह उन्होंने अमात्यों (न्यायाध्यक्षों) से पूछा।

महामात्योंने कहा—आर्य्यपुत्र! आपने मोल किया है। इसी आधारपर इसने आपका आराम ले लिया है।

*　　*　　*　　*

अनाथपिंडिकने गाड़ियोंपर मोहरें लदवाकर जेतवनको भिजवाना आरम्भ कर दिया और मोहरोंको जमीनपर कोटि संथार (किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछवा दिया। इस ढंगसे मोहरें बिछवानेसे उसका अठारह करोड़ मोहरोंका एक चबच्चा खाली हो गया, और दूसरी बार ८ करोड़से ८ करीस भूमिमें यह विहार आदि बनवाये थे।

सिर्फ थोड़ेसे स्थानको ढांपना बाकी रह गया। तब अनाथपिंडिकने आज्ञा दी कि जाओ भणे! और मोहरें ले आओ। इस दरवाजेपरकी जितनी खाली जगह है उसको भी ढांपेंगे! इतनेमें जेतकुमार आते-आते यह सब कुछ देखकर आश्चर्यमें डूब गया और मन ही मन विचारने लगा कि जिसके लिये यह इतना धन खर्च कर रहा है यह कुछ कम महत्वका काम नहीं है है। यह सोचकर अनाथपिंडिकने गृहपतिसे कहा कि बस गृहपति इस जगहको मत ढंकाओ। इस जगहके बनवानेका सौभाग्य मुझे ही प्राप्त होगा।

अनाथपिंडिक यह सुनकर मारे खुशीके आनन्द मग्न हो उठा कि जेतकुमार गण्यमान्य प्रसिद्ध मनुष्य है। ऐसे आदमीका प्रेम करना इस मज़हबके लिये भविष्यमें लाभदायक होगा। यही सोच वह स्थान राजकुमारके नाम रख दिया, और जेतकुमारने वहां एक कोठा बनवा दिया।

इधर अनाथपिंडिकने उस जेतवनमें विहार (भिक्षु विश्राम स्थान) बनवाये जिसमें परिवेण, (आंगन) कोठरियां, सभागृह

(उपस्थानशाला) हमाम—कल्पित कुटियां (भण्डार) पाखाने, पेशाब-घर, चंक्रमणशाला (टहलनेका स्थान), प्याऊ, जन्तागृह (स्नान-गृह) पुष्करिणी, मण्डप आदि सभी कुछ बनवाये। मगर उस विहारका नाम प्रसिद्ध किया जेतबनके नामसे। जब कि आज १०-१२) रुपये किसी अनाथाश्रमको दान करते हैं तो दर्जनों समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करा डालते हैं, और ईंटोंका फर्श उपाश्रयमें लगाते हैं तो अपने नामका खुदा हुआ पत्थर भी लगवा देते हैं। हाय ! आज धर्मवीरोंको अपने नामकी प्रसिद्धि कितनी प्रिय है ? जो करोड़ोंके दानके सामने कुछ भी नहीं है !



आदर्श सामायिक

जंगल भयानक है, सब प्रकारके जंगली जीवोंसे भरा हुआ है। ऊंचे-ऊंचे वृक्ष इस वनके नायक हैं। शल्लकी यहांकी वारांगना है। नदियां यहांकी मनोरंजक गायन सामग्रिएं हैं। सिंहराज यहांका शासक और गजेन्द्र यहांका भीमकाय महामात्य है अभी ज़रा सिंहराज सोतेसे उठ गये हैं, जमहाई लेकर अंगड़ाई तोड़ते हुए जरा यों ही सिंहनाद किया था कि घासपार्टी जीवोंमें भगदड़ पड़ गई। अभय—राजकुमारके पाससे होते हुए अनेक जीव सघन झाड़ियोंमें लुप्त हो गये। पर यह तो क्षत्रिय पुत्र था न्याय मन्त्री था, भला इसको कौन डरा सकता था; यहां तक कि इसके सधे हुए श्वेत-अश्वराजको भी कुछ भय न हुआ, यह उसी तरह निरुद्विग्न मनसे महामात्यकी सेवामें खड़ा रहा।

पर प्रधानकी पैरकी वेदना बढ़ती जा रही है, एक-एक रोम भादवके खीरेकी तरह दुःखसे फूल गया है, आखिर करौंदेका विषैला कांटा ही तो था न। देखते-देखते उसका सुकुमार पैर सूज

कर थूण हो गया। अभयकुमारने मन ही मन सोचा कि—इस वेदनासे समवसरणमें पहुंचना कठिन हो जायगा। कुछ समझमें नहीं आता, इसे किस प्रकार निकाला जाय।

इतनेमें सौकरिक सामनेसे आता दीख पड़ा। यह आखेटके शस्त्रोंको बांधे हुए था। इसने आते ही विनयसे मस्तक नवांकर निवेदन किया कि सरकार, यहां कैसे? यह पैर क्यों सूज गया है?

अभयकुमार—"घोड़ा थक गया था, क्योंकि आज बहुत दूरसे चला आ रहा हूं, पिछले 'सिद्धत्थक' गांवमें सुना था कि मार्गमें ही कहीं भगवान् पधारे हुए हैं। बस यह सुनते ही घोड़ेसे नीचे उतरकर पैदल चलने लग पड़ा था। जूता नवीन था, चमरस लग गया, तब जूते हाथमें लेकर चलना आरम्भ किया तो कांटा चुभ गया, अब उसी तकलीफसे विवश होकर बैठा हूं।" यह कह पैर अगाड़ी बढ़ा दिया सौकरिक (सुलस) ने मोचना और बाणकी अणीकी सहायतासे कांटा निकालकर उनकी हथेलीपर रख दिया, और बोला कि "देखिये डेढ़ चावल लम्बे कांटेने आपका दिल कीड़ीकी तरह छोटा कर दिया अब उसके निकलने पर ही आपको आरोग्य और शांति मिली है।" आराम और सुख हमको कितना अभीष्ट है कि—ज़रासे कांटेकी पीड़ाको भी हम नहीं सह सकते!

अभयकुमार उठ खड़ा हुआ, और चलते-चलते मुस्कुराता हुआ बोला कि—सौकरिक! ज़रासे कांटेने मेरा सब अंग शिथिल कर दिया। एक-एक रोम वेदनासे बिंध गया, साढ़े तीन हाथकी पली हुई कायको आज छठीका दूध याद आ गया। पर तेरे जैसे होनहार

बुद्धिमान् युवकपर खेद होता है कि अपनी तरह अन्य आत्माओंको नहीं देखता। सूरत और भावभंगीसे तो तू विवेकशील जान पड़ता है, पर तू भी बापकी कुटेवोंका अनुकरण करनेपर उतारू हो गया है। तेरे पतनका यही कारण है। आह! मालूम होता है तूने जगन्नाथ, षट्काय रक्षक ज्ञातपुत्र-महावीर प्रभुकी वाणी नहीं सुनी। पर चिन्ताकी बात नहीं, तुझे मेरे साथ उनकी सेवामें अवश्य चलना होगा। आज तेरा उद्धार हो जायगा। तेरे जन्म-जन्मान्तरोंके दरिद्र-संकट जाते रहेंगे। आज तू शुद्ध और पवित्र हो जायगा। जिससे इस उपकारका बदला मैं इसी जन्ममें चुका कर अपने कर्त्तव्यके पालनमें सफल हो सकूंगा।

यह कह अभयराजकुमार मन्त्री सौकरिक-व्याधको अपने साथ लेकर चला, और आध घंटेका पथ काटकर वनसे बाहर आ गया। तब समवसरण दूरसे दीख पड़ने लगा है। शेर-बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं। १२ प्रकारकी परिषद्में दोनोंने वीर परमात्मा की वन्दना की और उपदेश सुनकर आनन्द मग्न हो गए।

* * *

कालसूर कसाईको राजगृहके सब लोग जानते हैं, यह बड़े क्रूर प्रकृतिका मनुष्य है, सबको डरानेमें पूरा अभ्यस्त है। मनुष्यको मारकर यह हाथ नहीं धोता। इससे एक बार भी यदि लेन-देनका वास्ता पड़ जाता है तो यह समूचेको निगलकर डकार जाता है, इसके काटेका मन्त्र नहीं है, यह व्याजमें ही सबका सर्वस्व हरण कर जाता था। मूल इसका सदैव दूध पीता रहता था, और यह मनुष्योंका

उत्तम लहू पीनेमें कमाल कर जाता था। यह ५०० भैंसे नित्य मौतके घाट उतार देता था। इसका सई सवेरे कोई नाम तक नहीं लेता था। इसका घर राजगृहसे दक्षिणकी ओर था। सौकरिक (सुलस) इसीका इकलौता लड़का था। आज इसका भाग्य-उदय हो गया है। अभी-अभी भगवान् ज्ञातृपुत्र वीर प्रभुकी वाणी रूपी अमृत पीकर आया है। इसकी ही आत्माने अन्दरसे ठीक आवाज़ पैदा की थी। सर्वज्ञकी आवाज़ इसकी आत्मामें स्वातीके मेघकी तरह मिलकर अमूल्य मोती पैदा कर गई। अब यह जातिसे भी कसाई नहीं रहा है। इसने प्रभुके पहले ही उपदेशसे श्रावकके १२ व्रत लिये हैं। भगवान्ने इसकी अमर-आत्माके साथ-साथ इसकी अपावन देहको भी शुद्ध कर दिया है। अबसे इसके देह सूत्रमें संवर रहने लगा है और पाप कर्म आनेका आस्रव जाता रहा है। आज यह 'समणोवासओ जाओ' श्रमणोपासक हो गया है. आदर्श जैन हो गया है, अनादिसे इसे यह कर्म रोग हो रहा था कि जिससे पर परिणतिमें ही इसका अभिरमण चला आ रहा था। पर जो आत्माके स्वाभाविक गुणपर पर्दा पड़ गया है. उस पर्देको हटानेके लिये जो सद्भाव (शुद्धोपयोग) प्रगट करता है, वही श्रमण कहलाता है। उसकी स्वीकृति सेवा या उपासनामें सुलस स्वयं सेवक श्रमणोपासक या स्वावलम्बी हो गया है। शरीर, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, धन, अभ्युदय आदिकी उपासना इसकी दृष्टिमें गौण हो गई है। मुख्यतया मुनि (ज्ञान-दर्शन चरित्र) की सेवामें ही इसकी दृष्टि निष्ठा और भावना हो गई है।

'अभिगअजीवाजीवे' आत्माको सन्मुख रखकर जड़ और

चेतनके गुप्त भेदको भी ज्ञात कर चुका है। इसने जड़से पृथक् होनेकी ठान ली है। क्योंकि अब इसे दोनों वस्तुओंका वास्तविक परिचय मिल गया है। पर भगवानने इस अपावनको और भी पावन बनानेके लिये १२ वां अतिथि-संविभाग व्रत दे दिया है। जिसका आशय आत्मार्थी मुनियोंको आहार देना है। धन्य प्रभो! तेरी उदारता सराहनीय है। जिसने अवन्द्यको वन्द्य और अस्पृश्य-को स्पृश्य बना दिया।

* * * *

चुनारकी पहाड़ियोंका पत्थर मँगवा कर इसने एक ऊंचे भवनका अभी ही निर्माण कराया है। इस प्रासादमें १०-१२ घर गृहस्थी आरामसे रह सकते हैं। महल बहुत बड़ा है जिसे गगनचुम्बी महल कहना चाहिये। इसकी मंजिलें भी सातसे कम नहीं हैं। चारों ओरके वातायनोंसे संसार भरकी हवा यहीं आ लगती है। छहों ऋतुओंके योग इसमें पाये जाते हैं। चौथी भूमिकापर सदैव वारवनिताएं नाचती गाती रहती हैं। यहींपर कालसूर २४ घण्टे शराबके नशेमें मस्त पड़ा रहता है। इसके सिंहद्वारपर एक लम्बा-चौड़ा चबूतरा है। इस जगह सांझ होते ही तबलेपर थाप लगना आरम्भ हो जाता है। देश-देशान्तरोंकी वेश्याएं यहीं आकर एड़ियां रगड़ती हैं, और इप्सित धन पाकर मालामाल बन जाती हैं।

चबूतरेके सामनेसे एक लाल रंगकी नाली आती है, और उसके नीचेसे होकर सदर नालीमें जा गिरती है। मेघराज ही इसे वर्षा-कालमें धोकर कभी साफ करते हैं, अनुमानतः वह नाली सामनेवाले

तबेलेसे आई है। तबेला १००-१२५ बीघेका लम्बा-चौड़ा है। कालसूर इसी कत्लखानेमें ५०० भैंसे रोज मारता है। इसके अतिरिक्त और भी पशु-पक्षियोंकी यहां प्राण-नदी बहा दी जाती है।

उनके मांस, चमड़े, खून, हड्डी, आंत, सींग, खुर, पांख, चोंच आदिके व्यवसायसे बहुत-सा धन कमाता है। पटनेमें इसका बड़ा भारी रेशमका कारखाना भी खुला हुआ है। जहां करोड़ों रेशमी कीड़ोंको मारकर हजारों मन रेशम तैयार किया जाता है तथा देशान्तरोंमें भी रेशम रंगनेवालोंने इससे खूनकी आढ़त बना रक्खी थी। यह उनकी मांगके अनुसार हजारों पीपे खून रेशम रंगनेके लिये भेज दिया करता था।

* * * *

चबूतरेपर बैठा-बैठा सौकरिक मन ही मन सोच-विचारमें लगा हुआ है। भविष्यकी जीवन-सामग्रियोंको चुन-चुन कर एक ओर जमा करनेमें व्यस्त हैं। इतने ही में जूतोंकी चुर मुरकी आहट सुनते ही उसकी विचार धारा वहीं रुक गई। उसने पीछेको ओर मुड़कर देखा तो अपने पितारामको खड़ा देखा। उसने तुरन्त उठकर बापका शिष्टाचार किया। आज बापूके शब्दोंमें बिजलीकी तरह भयंकर कड़क और मादकता थी। उसने गर्वभरे शब्दोंमें कहा कि—

बेटे सौकरिक! तबेले जल्दी जाओ! आज २००० पीपे खून बैल गाड़ियोंमें लदवाकर गाड़ीवानोंसे सख्ती लेकर कहो कि पटने जल्द जायं। रेशमके कारखानोंमें खूनकी कई दिनोंसे मांग आई

थी। पर माल जरा आज दो दिनके विलम्बसे तैयार हो पाया है। कारण राजाकी आज्ञासे चौदस पन्दरसके दिन प्रति पक्ष यमघर बन्द रखना पड़ता है।

सौकरिक--पिताजी! क्षमा करें, अबसे आपकी इन आज्ञाओंका पालन करनेमें विवश हूं कारण इस नीच धंधेको भगवानके दरबारमें आज तिलांजली दे आया हूं। मुझसे इन हत्यारे कामोंके करानेकी आशा न रखियेगा, और पिताजी! इस अधर्मको अब आप भी छोड़ दें। जिससे नर्कके घोर खड्डे में पड़नेसे बच रहोगे।

कालसूर—सत्यानाश! हाय! हाय! जुल्म! जुल्म! मालूम हो गया, आज तूने मेरे कुलमें कलंक लगा दिया। जो तू मेरा पुत्र होकर आज उस ज्ञातृपुत्र महावीर प्रभुका भक्त (श्रावक) बन गया है। जैन क्या बना है, मेरे पेटपर लात मार दी है। आह! उनके मिशनने मुझे पहले ही मिट्टीमें मिला दिया है। उनसे मेरे व्यापारको भारी धक्का लगा है। इनको कैवल्य होनेसे पहले मेरा व्यापार खूब चमक रहा था। नौ निधि और बारा सिद्धिएं थीं। यज्ञवालोंने लाख लाख पशु मेरी मारफत एक दिनमें खरीदे थे। खास श्रेणिक राजाने एक दिन ६०००० बकरों और भेड़ोंका एक भारी झुंड मुझसे ही मोल खरीद किया था। पर हाय! जबसे श्रेणिक जैन बना है मेरा सब कुछ गुड़ गोबर हो गया। इस महावीरके मिशनने मेरी आय मिट्टी कर दी है। अब तो रुपयेमें दमड़ी भी मुश्किलसे पल्ले पड़ती है। तू मुझसे अभव्यका पुत्र होकर भी उनके बहकाये बहक गया। हाय! तूने मेरा घर चौपट कर दिया। लाखों

रुपये लगाकर तेरे और तेरी रोहिणीके लिये यह भवन बनवाया था जिसमें तुझे स्वर्गसे अधिक सुख मिलता। परन्तु तू तो भाग्यहीन है। जैन बनने चला है। क्या जैन बनकर इस घरमें भी रहनेका हौंसला रखता है? घरसे निकालते समय पाई तक न दूंगा। लंगौटी लगवा कर सब कपड़े भी उतरवा लूंगा। तब श्रमणोपासक बननेका मजा आयगा, मानजा-मानजा, क्यों जलेपर नमक छिड़क रहा है।

* * * *

सौकरिक—प्यारी रोहिणी! क्या तुम मेरे कथनानुसार श्रावक धर्मके १२ व्रत ले आई हो!

रोहिणी नतमस्तक होकर बोली कि—नाथ! इस दासीको आपकी आज्ञा मिलनेपर कब देर थी। सीधी भगवान् महावीरके समवसरणसे श्राविकोचित व्रत ले आई हूं।

सौकरिक—रोहिणी! तू धन्य है। जैन समाजको तुझ-सी आदर्श महिलाकी बड़ी ही आवश्यकता थी जिससे यह निःसन्देह कहता हूं कि मेरे भाग्य आज जागृत हो गये हैं। पर अभी ···”

रोहिणी—(बात काट कर) क्या हमारे शुद्ध होनेकी बात पिताजी भी जान गये हैं? मैं उनके स्वभावको जानती हूं। वे अवश्य ही अप्रसन्न हुए होंगे बड़े क्रूर हैं न!

सौकरिक—(हँसकर) वे तो अभी आज्ञा दे गये हैं कि आज ही इस घरसे निकल जाओ! वे समझते हैं कि मेरे मुखपर छोकरेने कालिख पोत दी है। आखिर है तो अभव्य, उल्टे बिचार

ही का न ! पर हां, एक बात और याद आती है, वह यह कि इस समय यही चिन्ता है कि सांझकी सामायिक कहां बैठकर करेंगे।

रोहिणी—इस तबेलेके पीछे कुछ दूर दक्षिणकी ओर एक ऊंचे टीलेवाली जो जमीन दीख पड़ती है उसपर प्रधान अभयकुमार एक 'अभयाश्रम' बनवानेवाले हैं। वहीं हम भी अपनी एक झोंपड़ी बांधकर उसमें रहा करेंगे। यह तो आप जानते ही हैं कि अब हम लकड़ियां बेचकर ही अपना निर्वाह किया करेंगे।

सौकरिक—और मुनियोंको आहार दान क्योंकर दे सकेंगे ? मात्र एक लंगोटी रखकर सब भूषण भी तो लौटा देने होंगे।

रोहिणी—प्राण प्यारे ! चिन्ताकी कौन-सी बात है ! मैं अभी-अभी सुनकर आई हूं कि भगवानका सच्चा साधु तो रूखा-सूखा आहार लेता है। वही मुनियोंको भी पड़गाह कर देंगे। उनकी नवधा भक्ति करेंगे। उनके लिये हलवे मांडेकी जरूरत नहीं है। उन्हींकी तरह हम भी अपना सादा जीवन बनायेंगे। परन्तु उस अभव्यात्माकी फूटी कौड़ी भी न छूयेंगे।

सौकरिक—और तुझे फिर कभी गहने बनवानेकी इच्छा तो न होगी ?

रोहिणी—आज मैंने तीन रत्न मुद्राएं और १२ अमूल्य गहने जब पहन लिये हैं, तब मैं आजसे सर्वथा सन्तुष्ट हो गई हूं। अबसे इस एक जैन महिलाके सत्य और शील ही गहने रहेंगे। चांदी-सोनेकी बेड़ियां नहीं।

* * * *

मंत्री अभयकुमारका "अभयाश्रम" बनकर तैयार हो गया है। इसमें सौकरिकको जैन मिश्नरीका पद दिया गया है। इसके प्रभावशाली व्याख्यान कसाई पाड़ेमें नित्य होते हैं। जैन सिद्धान्त पर खूब चर्चा रहती है। इसके मनोहर और आकर्षक प्रवचनोंसे सब कसाई लोगोंके विचार बदल गये हैं। कत्लखाने गोशालाके रूपमें हो गये हैं। इन सबको भगवानका श्रावक बनाया गया है। सौकरिककी जातिके सब लोग व्यापारी बन गये हैं। कुछ श्रमजीवी होनेके लिये तैयार हैं. पर कसाईका काम किसीको स्वप्नमें भी इष्ट नहीं। मात्र एक कालसूरको ही वहां कसाई कहा जाता हैं। बाकीके लोग तो साम्यवाद विधायक जैनत्वको पा चुके हैं।

प्रातः सायं इस आश्रममें २०-२५ हजार आदमियोंकी भारी भीड़ लगती है। उस समय शान्तिका साम्राज्य छाया रहता है। सब लोग मौन होकर सामायिकमें स्थित हो जाते हैं। उस समय इनकी दृष्टियां नासिकाके अग्रभागपर जम जाती हैं, कायोत्सर्गमें धर्मध्यानका चिन्तवन किया जाता है। इन सबकी सामायिक निर्दोष होती है। अब ये सब अणुव्रती जैन हैं। जो सौकरिककी दयालु प्रकृतिसे शुद्ध किये गये हैं। उस समयका यह व्यक्तिगत जैन बननेका मार्ग खुला हुआ था, जातिगत नहीं। उस समय जातिका कोई मूल्य न था। जेमनवारके अन्दर सबको सम्मिलित किया जाता था रोटी-बेटी व्यवहारसे किसी नवीन जैनको पुराने जैन वंचित नहीं रखते थे। क्योंकि उस समय धर्म काल था, सम-

दर्शित्व जीवन था। सौकरिकके अथक परिश्रमका फल भी यही निकला। इसीने कसाई जातिमें सुधार किया। २५॥ देशके जैनोंमें इसका नाम बड़े चाव और आदरसे लिया जाता।

मगर यह तो अब भी लकड़ियां बेचकर सादगीसे अपना उदर पालन करता है। इसीमें इसे पूर्ण सन्तोष है। इसके त्यागमें बड़ी ही मौलिकता है। प्रधान स्वयं इसकी सब प्रकारसे रक्षा-सेवा करना चाहता है। परन्तु वह परावलम्बी होना पाप समझता है। महामात्य आश्रममें आकर इसीके पास नित्य सामायिक करता है। इससे धर्म गोष्ठी करके ही अपनेको धन्य मानता है। इसीकी एक शाखा 'उदासीन' आश्रम है, जिसमें वयोवृद्ध पुरुषोंकी सेवा होती है। मगध और अंगके ३०० योजनके वर्गी-करण क्षेत्रमें इस प्रकारकी छोटी-मोटी हजारों संस्थाएँ और उनकी उपशाखाएँ बनाई गईं। बेऔलादवाले अपना इन्हीं संस्थाओंमें सर्वस्व दान करते थे। जैन गृहस्थ अपनी कमाईका चौथा भाग इन्हीं संस्थाओंको देते थे। उस समयकी जनताको सब प्रकारकी सहायता दी जाती थी। जिससे संसारमें बेरोजगारीको उस समय कोई भी नहीं जानता था। सौकरिक नित्य प्रति इन हजारों वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें तन्मय रहकर सबको मानव धर्मका पाठ पढ़ाता रहता था।

इधर रोहिणीका अनाथ बालिकाओं और वृद्धाओंकी सेवा करनेमें ही सब समय व्यतीत होता है। इसने अपनी जातिकी हजारों बहनें सुचारु रूपसे शुद्ध कराई हैं। वे भी सब परिपक्व

श्राविकाएँ हैं, शीलव्रती हैं, अंग शास्त्रोंकी स्वाध्याय करती हैं। देशके हितका ध्यान रखती हैं। जहां देशको अंगुली जैसी छोटी वस्तुकी आवश्यकता होती है वहां ये अपने तन-धनको भी न्योंछावर करनेके लिये सदैव तैयार रहती हैं। धर्म और देश-सेवाके लिये ही अपना जीवन समझती हैं। इस प्रकार यह चौथे आरेका अभयाश्रम अनेक देश-देशान्तरोंमें अद्वितीय गिना जाने लगा था।

* * *

आज कालसूरका १७ वां है, उसके मरनेकी घटनाको सुनकर रोमांच हो उठते हैं। क्या एक मच्छीका कांटा होता है, बस वही हलकमें उलझ गया था। तबसे बिचारा सूखकर कांटा हो गया था। वर्षों बाद तड़पनसे एक दिन उसकी बिल्कुल जान निकल गई, अब उसके क़त्लखानेमें हड़ताल पड़ गई है। १७ वें दिन कुटुम्बके ५१ आदमी मिलकर अभयाश्रममें आये। ६-७ घंटे तक वाद-विवाद करते-करते धरनासा मांड बैठे। सौकरिकसे बल-पूर्वक कहते हैं कि बापकी जगहपर बिन्दी मत लगाओ। वर्ना आज मगधमेंसे कसाई कर्म उठ गया समझो। परन्तु पति-पत्नीका जोड़ा सुमेरुकी तरह अचल था।

एक प्रमुख—सौकरिक ! बापका व्यवसाय करनेमें क्या डर है ?

सौकरिक—मुझे वीर परमात्माकी दयासे कभी भय नहीं लग सकता मात्र एक पाप कर्मका भय रखता हूं। जिसका विपाक सबको झख मारकर भी भुगतना पड़ता है। उसका उदय आते समय कोई भी मित्र उसका भाग नहीं बंटा सकता।

प्रमुख—हम यहां सब मिलकर जितने मनुष्य आये हैं पापके उतने ही हिस्से कर लेंगे। लो बस अब तो चलो। इससे बढ़कर और क्या दिलासा दिया जा सकता है। बस चलो देर मत करो।

सौकरिक—भद्रे रोहिणी ! जरा दुकान तक चलना होगा।

रोहिणी—पधारिये पतिदेव !

*　　　*　　　*

आज दुकानके चबूतरे और सड़कपर भारी भीड़ जमी खड़ी है। जो भी सुनता है भागा चला आता है। यह खबर विजलीकी तरह राजगृह भरमें फैल गई है। सबको सुनकर यही अचरज होता है कि—क्या आज वह सौकरिक नहीं है जिसने अब तक हजारों हत्यारोंकी कई पीढ़ियोंका पाप धोया है। मगर न मालूम आज यह अपने बापकी दुकानपर क्या करने आया है।

आज सौकरिकने २८ वर्षके बाद अपने बापकी दुकानमें पैर रक्खा है। आल्मारीसे पैनी छुरी निकालकर जनताके देखते-देखते अपनी कोमल जांघमें एक जोरका हाथ मारा कि छुरी ४ इञ्च जंघामें थी तिसपर वह था एकदम मूर्छित।

रोहिणीने सहसा गुलाब जल छिड़ककर स्वामीकी मूर्च्छा दूर की।

सौकरिक होशमें आकर बोला कि बन्धुओ ! इसमें भारी दर्द हो रहा है जिसे मैं ही जानता हूं, कितना असह्य है। रुलाई आने-वाली है। अतः शीघ्र ही इस दुःखके ५१ भाग बनाकर सब बांट

लो और एक भाग मेरे पास रहने दो जिससे मुझे आरोग्य लाभ हो।

सब कसाई – भाई! दुःखके बटानेकी किसीमें शक्ति नहीं। इसके हिस्से नहीं बनाये जा सकते। इसे तो वही भोगता है जिसके दमोंपर आन बनती है। हम सब इस समय बेबस हैं।

सौकरिक—ऐ मेरे बाल मित्रों! जब इस साधारणसे दुःखके बटानेमें तुम सब असमर्थ हो तब पाप और उसके दुःख फलके भाग क्योंकर ले सकोगे। अतः अब भी समझो, सचेत होकर पापके बिलसे निकलो। मुझे तुम्हारी अज्ञान दशापर बड़ी दया आती है। अतः चलो, भगवान ज्ञातृपुत्र-महावीर स्वामीकी शरणमें चलो जिससे तुम्हारे दोनों लोक सुधर सकते हैं।

यह सब देख-सुनकर दर्शकगण अवाक रह गये। सब मन्त्रवत कीलितसे थे, और बार-बार उनके मुखसे यही निकलता था कि दयालु श्रमणोपासक सौकरिककी जय! णायपुत्त भगवान वीर परमात्माकी जय!

* * *

पूर्णक सेठ अपने नौमहलेसे जनमेदिनीमें इस दृश्यको दूरसे देखकर चकित हो गया। मन ही मन उसकी बड़ाई करने लगा, और विचार आया कि जिस कत्लखानेको राजसत्ता द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था उसी पापके अड्डे को महावीरके जैन मिशनमें भर्ती होकर उस कसाईके पुत्रने किस प्रकार रोक दिया। कितनी वजनदार युक्ति है जो अनपढ़ और जड़ मानवोंके मनको भी हिंसासे

रोक दिया। अहिंसाका पाठ पढ़ाकर अन्तस्तलपर किस गजबकी छाप डाली है। जिसने इसकी आत्मामें ऐसे उच्च कोटिके भाव भरे हैं वह कोई आदर्श महात्मा है। ईश्वरका नवीन अवतार ऐसी ही आत्मा होती है। इतनेमें 'मज्जक' सेवकने आकर कहा कि—देव! आज ज्ञातपुत्र महावीरके श्रमणोपासकोंका बोलबाला है। जैन समाजकी संख्या त्रैवर्णिकोंके अतिरिक्त अछूतोंमें बड़े जोरोंसे बढ़ती आ रही है। अब तक बड़े-बड़े राजपुत्र ही इस धर्ममें दीक्षित होते थे। परन्तु अब तो छोटी जातिके लोक भी आदर्श मनुष्य बनते जा रहे हैं। आज मैं भी सौकरिकके आदर्श जीवनपर मस्त होकर उसीसे पांच अणुव्रत रूप दीक्षा लेकर अभी वहींसे आ रहा हूं। जैन धर्म सबके लिये धर्मद्वार खोल रहा है। सबको सहयोगी बनाता है। अभेद रूपसे सबको अपनाता है। यह प्राणीमात्रका हित-चिन्तक है।

पूर्णक सेठ—मज्जक! इस समय ज्ञातृपुत्र महावीर भगवान किस स्थानपर विराजमान होंगे?

मज्जक—मालिक! इस समय गुणशीलक उद्यानमें एक भूतके मन्दिरके सामने एक विशालकाय दृढ़ आसनपर बैठे हैं. और सुन्दर स्याद्वाद शैलीका उपदेश करते हैं। मेरा भाई पज्जायक अभी-अभी उनसे जाल बुननेका व्यापार छोड़कर आया है। ये देखो जालके टुकड़ोंका पुलिन्दा मेरे पास मौजूद है। जो उसीने मुझे विश्वास दिलानेके लिये भिजवाया है। यह उसके त्यागका आदर्श परिचय कितना मौलिक है।

पूर्णक सेठ— वे वहां भूतालयके सामने क्यों ठहरे हैं ?

मज्जक—अज्ज ! वे वहां इसलिये ठहरते हैं कि—"बहुसंख्यक लोगोंकी यह मान्यता है कि हम यक्षकी पूजा-अर्चना करते हैं, और वह हमें धन, जन, पुत्र, स्त्री आदिका सुख देता है, सब अनुकूलताएं उसीके अधीन हैं। समृद्धिका मिलना उसीकी आसीस और पूजाका फल है। इस प्रकारके उल्टे विचारोंमें लोग अनादि कालसे भूलते-भटकते आ रहे हैं। इसी कारण भगवानने उसी यक्षालयके सामने अपनी अशोक छायामें सबको अविरल शांति और विश्राम दिया है, और यक्षके जड़ पूजक पक्षपातियोंपर शिक्षामृतकी वर्षाका आरम्भ कर दिया है। इसीसे मगधके करोड़ों मनुष्योंके विचारमें परिवर्तन आ गया है। उन्हें अब यह प्रतीत होने लगा है कि हम अपने ही कर्मानुसार सुखी और दुखी होते हैं। यक्ष विचारा क्या किसीके भाग्यमें घुस निकलेगा कभी नहीं। इसीसे अब वहां ईन मीन साढ़े तीन पुजारी रह गये हैं। जहां मनुष्योंका गमन-आगमन अधिक होता है प्रभु वहां ही ठहरते हैं। आजकलकी गन्दी गलियोंके उपाश्रयोंकी तरह उनके लिये बन्द मकानकी आवश्यकता न थी। भगवान वहां इसलिये भी ठहरते हैं कि किसी तरह लोगोंको मानव धर्मकी शिक्षा मिले, और उनके द्वारा मिले असंख्य प्राणियोंको अभयका दान। अतः सेठजी ! आप भी वहां जाकर उनका दर्शन लाभ लेकर पवित्र उपदेश सुननेके भाग्यशाली बनें।

* * * *

पूर्णक गुणशीलक उद्यानको देखकर रथसे नीचे उतर गया है।

(१) उसने प्रभुकी सेवामें उपस्थित होनेकी जल्दीमें अपना जड़ाऊ नीलमणि जूता वहीं उतार कर अलग रख दिया, तथा यह विचार आया कि यदि नंगे पैरों जरा मैं भी चलकर देखूं तो पता लगे कि अनेक दीनोंको नंगे पैरों चलनेसे कितना कष्ट मिलता है, और कुछ सहिष्णुता भी आयेगी। अनेक प्राणी कुचलकर प्राणान्त होनेसे बच रहेंगे। यह प्रभुके दर्शनका मुझे पहला लाभ मिलेगा।

(२) सवारी इसलिये छोड़ रहा हूं कि बड़प्पनका घमण्ड न रहे। क्योंकि मुझे तो जिज्ञासु बनकर इनसे आत्म-मार्गकी सीख लेनी है। अतः वहां यह मान न रहे कि मैं अरब-खरबपति सेठ हूं। न कुछ मैं जन-समाजको अपना भारी-भरखमपन दिखाने ही आया हूं। मेरे वैभवकी अपेक्षा उनका त्याग सबसे ऊंचा है। अतः मेरा महत्व इसीमें है कि मिट्टीमें बीजकी तरह खाकसे उदय पानेके लिये प्रभुके बताये मार्गका अनुसरण करनेमें ही मेरा परम कल्याण है।

(३) पान, सुपारी, फूलमाला और फूलोंके गजरे भी उतार फेंके, और उसे रह-रहकर यही विचार आने लगा कि मुझे अब यहां आकर इन्द्रिय विषय लोलुप भी न बनना चाहिये। विलासितासे आत्माका बहुत कुछ पतन हो चुका है। अब तो महान् आत्माके दर्शनसे सादगी, सभ्यता, सहानुभूतिके साथ-साथ सन्तोष पाना चाहिये। इसीसे इस साधकने आकर्षक और मोहक वस्तुएं उतार कर अलग कर दी हैं। क्योंकि चरित्र-शील होते समय ये वस्तुएं न तो स्मृति पथमें ही आयंगी और न आत्म-रमणताके समयमें बाधक ही बनेंगी।

(४) प्रभुके सभा-मंडपमें जब सिंह-बकरी भी एक घाट पानी पीते हैं। कोई किसीका शत्रु नहीं रहता, इसीसे वीतरागताके अनु-करण करनेकी प्रबल उत्कंठा जागृत हो जाती है। नृशंस और श्वपद जीव तक भी आपसका जातीय द्वेष यहां आकर दूर देते हैं। उन पशुओंने भी हिंस्रभाव छोड़ दिया है। निर्बलपर घातकताका द्वेषभाव भुलाकर साम्यभाव पैदा कर दिया है। यह सब इस सिद्ध पुरुषका ही प्रबल प्रभाव और माहात्म्य है। तब मनुष्योंको तो उच्च कोटिका प्रेम पाठ सीखना चाहिये। यही भाव लेकर पूर्णकने भी अपना कटार खोलकर चार घंटेवाले रथमें फेंक दिया। इसी तरह जेबसे चाकू और हाथका फँसी बेंत भी उसी जगह रख दिये।

(५) यदि ग्राहक मेरे पास कोई क्रय वस्तु खरीदने आता है तब मैं उसे ऊंची कक्षाकी बहुमूल्य वस्तु दिखाता हूं, न कि घटिया, तब इसी भांति मैं भी भगवान् महावीर प्रभुसे धर्म सुनने जा रहा हूं। तब क्या वे भी मुझे उच्च कोटिका धर्म न कह बतायेंगे? और मुझे भी कुछ उसपर मनन करने और दृढ़ विश्वासके लिये तैयार होकर जाना चाहिये। यदि अभीसे अभ्यास करूंगा तो चरित्रका पार ले सकूँगा। यही विचार कर बोलनेमें वायु द्वारा होनेवाले हिंसा दोषको रोकनेके लिये मुखपर एक वस्त्रका पर्दा कर लिया, और विनयके साथ नतमस्तक होकर पांचों अंग झुका दिये, तथा हर्ष और उत्साहसे भरपूर होकर वीतरागकी सेवामें उपस्थित हो गया।

* * * *

प्रभुके दरबारमें उस समय मनुष्योंके अतिरिक्त पशु और

पक्षीगण भी आशासे अधिक संख्यामें उपस्थित होते थे। जिसमें गाय, बकरी, सिंह, चीता, खरगोश, स्याहगोश, कुत्ता, बिल्ली, भालू, बन्दर, व्याघ्र, हंस, मोर, सांप, चील, चिड़िया आदि अनेक प्राणियोंसे दरबारका एक भाग खचाखच भरा हुआ था। तीन घण्टे तक साम्यवाद और स्याद्वादपर व्याख्यान हुआ। धर्म, प्रेम, जीवनका उदय, ईश्वर, कर्म, सृष्टि आदि सब ही विषयोंकी व्याख्या की गई। इसके अनन्तर सर्वप्रथम वन-जन्तुओंने अनुक्रमसे इस प्रकार त्याग और प्रतिज्ञा लेना आरंभ किया।

बकरी—प्रभो! मैं दांतोंसे छानकर पानी पिया करूंगी, और पक्षके अन्तिम दिन सूखा घास खाया करूंगी। पर उस दिनके लिये घास सुखाकर खानेका विचार तक न करूंगी।

कई पक्षीगण—भगवन! हम सब रात्रिभोजनका त्याग करते हैं, इसके अतिरिक्त रातका विचरना भी आजसे छोड़ते हैं।

गाय—परमात्मन! मैं सूखा घास फूस खाकर मनुष्यको दूध दिया करूंगी। और मर जानेपर चमड़ा, हड्डी, सींग आदि और अपने होश-हवास दुरुस्त रहते हुए कभी स्नान भी न करूंगी।

बकरी—नाथ! हम सब मिलकर प्रेम प्यारसे बैठा करेंगे। कभी लड़ाई न करेंगे, और मनुष्यकी भलाईके लिये अपनी आंतें तक देनेमें इन्कार न होगा। चाहे कोई हमें मारकर ही क्यों न खा जाय पर हम किसीसे प्रतिहिंसा और कृतघ्नता न करेंगी।

सिंह और वृक—विभो! जहां तक आप विराजमान हैं वहां तक हम किसीको न मारेंगे।

गाय—तब क्या इतने दिन उपवास ही करते रहोगे ? अच्छा मैं अपना दूध पिला दिया करूंगी। पर मांस भक्षण न करना, इसकी तो हड़ताल बराबर जारी रखना।

सिंह—जगदम्बे ! यह भी तो खूनसे ही बनता है। अतः उसे भी न पीऊंगा। इसके अतिरिक्त भूखसे मर जाना अच्छा है परन्तु अपने बछड़े भाइयोंका हक छीनना महापातक है। गरीब-की हाय बुरी होती है और वह सिंह जैसोंके लिये भी असह्य है।

सर्प—जगदुद्धारक ! हमने पहले जन्ममें क्रोध अधिक किया था। संघमें कलह अधिक लम्वा बढ़ाया था, जिससे हमको लम्बकाय विषकी रस्सी-सी बनकर छातीके बल चलनेका प्राकृतिक दण्ड मिला है। तथापि हमसे हर किसीको भय न लग पावे, अतः संवत्सरीसे वीर जयन्ती तक हम लोग पृथ्वीमें ही छुप रहा करेंगे।

बिच्छू—दयालु पुरुष ! सर्दियोंमें मैं भी बाहर न निकलूंगा।

कुत्ता—वर्धमान ! मुझसे भय खाकर जो ज़मीनपर बैठ जायगा, उसे कभी न काटूंगा। किसीका नमक खाकर उसे हराम भी न करूंगा।

भगवान—अरे ! कोई आदर्श त्याग भी करो ! जिससे इस विश्वको तुमसे कोई शिक्षाका पाठ मिले। ये तो मामूली त्याग हैं। कोई यावज्जीवके लिये महात्याग कर दिखाओ। मेरे विचारमें आपको सब प्रकारसे समदर्शी बन जाना चाहिये। जिससे तुम्हारा इस अज्ञान योनिसे उद्धार हो।

सब पशु पक्षी एक स्वरमें—अन्तर्यामी सर्वज्ञ ! हमें यह भी स्वीकार है, अबसे हम सब मिलकर छूत-छातके मसलेको उड़ाकर एक तरफ बालाये ताक रखते हैं। हम सब एक ही तालाबमें पानी पीयेंगे। एक नदी, एक कुयेंमें ही सब पानी पिया करेंगे। आजसे जाति मदको निवाप-अंजलि देते हैं। बस यह हमारी पूर्ण समदर्शिता है।

आज प्रभुकी सभामें पाशवके आदर्श त्यागसे मानव समाजकी छाती हिल उठी, सबकी गर्दन नीचे झुक गई। मनही मन विचारने लगे कि—आजका पशुवर्ग अपनी हैसियतसे अधिक त्याग दिखा रहा है। यदि हम इनसे कुछ शिक्षा लेकर अधिक त्याग न करें तो मनुष्यके रूपमें पशु जैसे या उससे भी बदतर हैं।

पूर्णक इनके इस आदर्श त्यागपर एकदम गद्गद् हो गया। वीर परमात्माके उपदेशसे उसे आज मानो अपना ही अनन्त आत्म-धन मिल गया। सभा विसर्जन हो गई। पूर्णक १२ व्रतोंसे सुसंस्कृत होकर अपनेको धन्य मानता हुआ अपने घर आया। आते ही इसने अपने साथ-साथ जीवनका एक पहलू बदल दिया। जिसके सामने इन्द्र, अहमिन्द्र नरेन्द्रके सुखी जीवन भी कुछ न थे।

* * * *

आज बिम्बसार-मगधेश १४ हजार मुनिराजोंको दण्डवत् करते-करते थक गया, सांस फूल गयी, कलेजा धीरे-धीरे हिलने लगा। परन्तु फिर भी साहस-पूर्वक ज्ञात-नन्दन-महावीर देवसे यह निवेदन किया कि—

हे देवज्ञ ! मैंने अपनी युवावस्थामें अनेक लड़ाइयें लड़ीं अब तक यही हाल है, इस बुढ़ापेमें भी बड़े-बड़े जवान मुझसे लोहा नहीं ले सकते ! किसी भी श्रमजनक कार्यसे आजतक कभी थकान न चढ़ी, पर मेरे अन्तर्यामिन ! यह मैं सच कहता हूं कि आज तो मुनिवन्दन करने-करते थक गया। क्या उठ-बैठ करनेकी वन्दना पर इसीसे कस बलसे निकल गये। आजसे मैं यह मान्यता स्वीकार करता हूं कि मनुष्य धर्म करते समय थकनेका बहाना बना लेता है; किन्तु पाप करते कभी नहीं थकता।

भगवान् - श्रेणिक ! जब तू धर्मसे अपरिचित था तब एक दिन किसी वनमें एक हिरणीपर वाण चलाया था, और वाण इतने जोरसे लगा कि उसके पेटसे पार होकर किसी वृक्षमें जा चुभा। यह देख तूने उछल-उछलकर अपने इस आखेट कर्मकी प्रशंसा की थी। जिससे तेरे भावोंमें इतनी पाप कालिमा आ जमी कि तेरी आत्मामें सातवीं नरक जैसे दल बन्ध गये थे, और वे आज वन्दना करते समय शुभ भाव आनेपर एकदम नष्ट हो गये हैं। आज ही तूने सच्ची वीरता दिखाई है। आज आत्माने अपने बल-वीर्य-पुरुषार्थ और पराक्रमकी सच्ची स्फुरणा की है। जिससे थकान मालूम होती है, आज तू पापके दंगलमें बहिरंग भावको मात दे चुका है। आज छः नरक जितने पाप कट गये हैं, अब तो मात्र एक नरक जितने ही रह गये हैं, यह तेरी हार तुझको मुबारिक होगी, और आज तूने सच्ची जय पाई है, चिन्ताकी बात नहीं है श्रेणिक !

श्रेणिक—अनन्त-ज्ञान-दर्शिन् ! क्या आपका अन्तेवासी श्रावक रहकर अब भी नरकमें जाऊंगा ! यदि आज्ञा दें तो इस वार फिर वन्दना करूं जिससे इस एक नरकके पापसे भी पिंड छूटें या कोई और उपाय बताएँ जिससे मेरी वह भयंकर काली नरके कुण्डिका भी टूटे।

भगवान—श्रेणिक ! अब उस नमूनेके भाव तो न आयेंगे। परन्तु यदि तू पूनियाकी एक समायिक भी मोल ले सके तो इस भयानक नरकके गर्त्तसे शायद बच भी जाय।

* * * *

मगधके 'रात्रिक' बाजारमें एक घासकी झोंपड़ी है, जो कि पुरालके फूससे छाई गई है, अगाड़ी एक बड़ासा चबूतरा है, जो मिट्टी-गोमयसे मानों अभी लीपा पोता है, इसमें दाहिने कमरेमें रूई और पूनीका ढेर व्यवस्थित है, उसके अन्दर शायद रसोई घर है, जिसमें मात्र एक मिट्टीका तवा और एक मिट्टीकी परात रक्खी है। घड़ेपर भी एक मिट्टीकी ही लुटिया रक्खी है। पीली मिट्टीकी सफाईसे पुता हुआ आंगन सोनेको हंस रहा है, इस झोपड़ी में सफाई इतनी है कि वह राजमहलको भी नसीब नहीं हो सकती श्रेणिक राजा यहीं आकर एक हलकी-सी आवाज़में कहता है—पूनिया ! भाई पूनिया ! ज़रा बाहर तो पधारिये ! तुझसे कुछ आवश्यक काम है। परन्तु भीतरसे कोई उत्तर न मिला। परन्तु तुरन्त ही एक पड़ोसीने हाथ जोड़कर कहा कि—सरकार ! क्या काम है वह अन्दर है, इस समय सामायिक कर रहा है। इसमें

पहर दिन चढ़े तक हिलना भी नहीं है बोलना तो दरकिनार रहा यह उस समय तक आंख उठाकर भी न देखेगा। अतः आज्ञा कीजिये ! आपका सन्देश एक बजे तक अवश्य पहुंचा दूंगा।

श्रेणिक—भाई ! हमें तो इससे एक सामायिक मोल लेना था ! जिसकी अब ही बात-चीत हो जाती तो ठीक था।

प्रातिवेश्मिक—(स्वगत) हंस कर और कुछ सोचकर (प्रगट) हे राजन् ! आपकी बात सुनकर प्रत्येक मनुष्यको आश्चर्य हो सकता है। कारण प्रथम तो सामायिक जैसी आन्तर वस्तु कोई ऐसा वैसा खिलौना नहीं है, जो बाजार गये और खरीद लाये। दूसरे सामायिक कोई छोटे-मोटे मूल्यकी वस्तु नहीं जो १००) २००) रुपया ले-देकर जेबके हवाले कर दी जा सके। तीसरे मुझे यह भी आशा नहीं पड़ती कि पूनिया अपनी सामायिक बेचनेपर राजी हो जाय।

श्रेणिकराज—क्या कहा, राजी न होगा ! नगदनारायण वह वस्तु है जिसे देखकर देवताओंके मुँहसे भी लार टपक पड़ती है जिसमें इस बनियेंकी तो क्या असल है। इसके अतिरिक्त इसकी इच्छा हो तो लागतसे दुगुने-चौगुने सौगुने-हजार गुने तक दाम ले ले। उधारका काम नहीं, हम सब नकद चुका देंगे। चाहे तो अभी कोषसे जाकर चेक भुना लावे। श्रेणिक वह राजा नहीं है जिसके पीछे बर्षों तक तगादेवाले गलियोंकी खाक छाना करें और उसकी कल ही पूरी न हो।

प्रातिवेश्मिक—राजन् ! अपराध क्षमा हो, पर शायद आप मेरे

अभिप्रायको समझे नहीं, अतः मैं सारी घटना अथसे अंतकत सुनाता हूं। वास्तवमें बात यह है कि अबसे १२ वर्ष पहले यह पूनिया सेठ पूर्णकके नामसे प्रसिद्ध था। एक दिन यह वीर प्रभुके पास पहली ही बार गया था, पहले-पहल उपदेश सुनकर इसने श्रावकके १२ व्रत स्वीकार कर लिये। उस समय यह अरब-खरब धनका स्वामी और इभ्य सेठ था। एक दिन अपने कुटुम्बको एकत्र करके यह कहा कि—जिसको जितना दाय भाग पहुंचता है वह उस दायादका सौ गुणा ले ले। यह कह उसने सबको इसी रीतिसे उनका हक दे दिया। सबको आशासे अधिक भाग बांट दिया। तथा सबको अलग-अलग कर दिया। वे सब अब भी करोड़ोंपर गद्दी बिछाये बैठे हैं, सबकी सुख चैनसे कटती है।

बटवारेसे बच रहे धनसे राजगृहके पूर्व द्वारपर एक अनेकान्त-वाद विद्यालय खोला। जिसमें हजारों विद्यार्थियोंकी पाठ्य व्यवस्था की गई है। जिसका ध्रुव कोष कई करोड़ है।

पश्चिममें नगर द्वारसे कुछ दूर भिषगालय स्थापन किया है। जहां लाखों मनुष्य और पशु चिकित्सा द्वारा आरोग्य लाभ पाते हैं।

और उत्तरके नगर द्वारकी ओर इसने 'अनाथ-रक्षक-गृह' बनवाया। जिसमें मनुष्य और पशुओंको आरामसे रक्खा जाता है। अनाथोंके लिये खाने-पीने पढ़ने तककी उत्तम व्यवस्था है। वहां अनाथोंका सुखसे भरण-पोषण होता है।

तथा दक्षिणकी ओर 'उदासीनाश्रम' भी है जिसमें पकी उमरके

स्त्री-पुरुष अलग-अलग रक्खे जाते हैं। वहांपर वे अपने बुढ़ापेके जीवनको धर्म और सुख शान्तिसे बिताते हैं। जितनी सेवा उनकी घरपर सन्तान नहीं करती होगी उतनी वहांपर होती है। नगरके मध्य भागके चौक बाजारमें इसका एक महाकाय आर्हत पुस्तकालय है। जहां जनताको आगम-शास्त्र स्वाध्याय करनेका अवसर संसार भरकी भाषाओंमें मिलता है, और व्यावहारिक शिक्षाके लिये भी लाखों पुस्तकें हैं।

यहींपर ग्रामीण बन्धुओंके सुभीतेके लिये हजारों चलते-फिरते पुस्तकालयोंका भी सुन्दर प्रबन्ध किया गया है। इसकी सब संस्थाओंका ट्रस्टी महामात्य अभयराजकुमार है।

इसपर भी एक दिन इसने विवेकसे काम लेकर विचारा कि मगध, अंग, बंग और कलिंगमें मैंने किसीका कोई ऋणी नहीं छोड़ा है। सबको अनृण किया, दान भी किया, जनताके लाभार्थ संस्थाएं भी बना दीं, तब भी बहुत-सा धन बच गया है। इसका निवेड़ा ही नहीं आता। यह लक्ष्मी फिर भी बन्दरीके बच्चेकी तरह चिपटी ही रहती है, मेरा पीछा ही नहीं छोड़ती। उसने एक दिन सिर्फ सात सिक्के रखकर बचा-खुचा सब धन कूड़े-करकटकी तरह बाजारमें फेंक दिया, और फूसकी झोपड़ी बांधकर तबसे यह यहां ही रहता है। सात सिक्के ही इसकी निजी पूँजी है। इससे अधिक यह फूटी कौड़ी भी लेनेको तैयार नहीं है। रूई और पूनियोंका व्यवसाय करके अपना उदर निर्वाह करता है। पगड़ी, धोती, चादर, छोड़कर इसकी कोई पोशाक नहीं

है। सामने जो तवा देख रहे हो राजन्! वह भी मिट्टीका है। अतः मुझे यही विचार आता है कि आप इसकी शुद्ध और बहुमूल्य सामायिक किस प्रकार क्या देकर खरीद सकोगे। आपकी यह इच्छा शायद ही पूरी हो। कुछ भी हो, यह सौदा आपको बहुत महँगा पड़ेगा। क्योंकि इसकी सामायिक चलती-फिरती, हँसती-बोलती बतराती निन्दा करती फिल्म नहीं है। इसकी सामायिक तो सुमेरुकी तरह अचल तथा रत्नाकरकी तरह अमूल्य और गम्भीर है।

* * * *

श्रेणिक—जिनराज! उसकी एक सामायिकका क्या मूल्य है?

भगवान्—संसारकी सब सम्पत्ति देकर भी उसकी एक सामायिकका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता।

गौतम—राजन! चौथी भूमिकापर हो इसलिये तुम्हें यह सामायिक महँगे मोल पड़ रही है।

श्रेणिक—देव! जिस दिन सम्पूर्ण त्यागके द्वार खोल दूंगा उसी दिन सामायिक मेरी है, और वह मेरी अक्षय निधि है। इसे पानेके लिये श्रीमानसे गरीब बनना होता है, बस ज़रा इतनी ही कठिनाई है जिसके लिये विवश हूं।

सोणदण्ड

चम्पानगरमें धनिक विद्वान् और सुशीलाग्रणी सोणदण्ड नामक एक ब्राह्मण रहता था। सैकड़ों विद्यार्थी इसे मान देकर इसके पास पढ़ते थे।

एक वार महात्मा बुद्ध चम्पानगरके बाहर गगरा पुष्करणीके तीरपर आकर ठहरे। उस समय उनके पास ५०० भिक्षु थे, इनका उपदेश सुननेके लिये नगरके सब ब्राह्मण जा रहे थे। जिन्हें देखकर सोणदंडने कहा भाइओ! तुम वहां न जाओ बल्कि मुझे वहां जाने दो। ब्राह्मणोंने कहा, आप जैसे बिद्वानोंको कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं। इस आचरणसे आपकी प्रतिष्ठाको हानि पहुंचेगी।

सोणदण्ड नम्र और विनीत था और गौतम बुद्धके माहात्म्यको जानता था। इसीसे उनकी योग्यताकी प्रशंसा की और कहा कि ये ऐसे ही महात्मा हैं, इनके पास मेरा जाना ही आवश्यक है। यह कह सोणदण्ड बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ गौतम बुद्धके पास गया,

और वहां इस विषयकी चातुर्यपूर्ण चर्चा छिड़ी कि वास्तविक ब्राह्मणत्व किसमें है।

गौतमबुद्ध सोणदण्डके मनका अभिप्राय समझकर यों बोले—

सोणदण्ड ! वह कौन-सी वस्तु है कि जिसके होनेके कारण ब्राह्मण यह कहनेका गर्व रखता है कि मैं ब्राह्मण हूं।

सोणदण्ड—गौतम ! पांच बातें ही तो ब्राह्मण 'मैं ब्राह्मण हूं' यह यथार्थरीत्या कह सकता है।

(१) प्रथम वह माता-पिताके उभयवंश विशुद्धमें उत्पन्न हुआ है।

(२) तीनों वेदोंमें और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य शास्त्रोंमें प्रवीण है।

(३) सुन्दर और गौर वर्ण है, उसका दर्शन देखनेपर सबको प्रिय लगता है, और भावितात्मा भी है।

(४) शीलवान—चरित्रवान भी परिपूर्ण है।

(५) प्रज्ञावान—बुद्धिमान है।

गौतमबुद्धने पूछा कि सोणदण्ड ! रूप, कुल, श्रुत, शील और प्रज्ञा इन पांचोंमेंसे यदि एक भी कम हो तो कुछ हानि तो न होगी ?

सोणदण्ड—हां हां क्यों नहीं, रूप न हो तो कोई परवाह नहीं। बाकी चार हों तो बस है।

बुद्ध—यदि इन चारोंमेंसे किसीको कम कर दिया जाय तब ?

सोणदण्ड—श्रुत विद्या न हो तो कोई हानि नहीं।

बुद्ध—बाकीके तीनोंमेंसे यदि किसी एकको और कम कर दें तो ?

सोणदण्ड—हां कुल न हो तो भी काम चल सकता है।

यह सुन और ब्राह्मण चमक उठे। पर वह उन्हें शान्त करता हुआ बोला कि भाइयो! मैं कुछ अपने रूप, कुल और विद्याकी निन्दा नहीं कर रहा हूं बल्कि यह कहता हूं कि ब्राह्मणत्वमें किस-किस उपयोगी विषयकी आवश्यकता है यों समझा कर उनको शान्त किया।

बुद्ध—अब तो दो बाकी रह जाते हैं शील और प्रज्ञा। पर यदि इनमेंसे भी किसी एकको कम कर दिया जाय तब तो शायद कोई हानि न होगी न?

सोणदण्ड—नहीं साहब, जिस प्रकार दो हाथ या दो पैर एक दूसरेकी सहायतासे धुलकर साफ होते हैं। इसी प्रकार शील और प्रज्ञा भी एक दूसरेसे शुद्ध होते हैं। शीलवान्‌को ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है, और तब कुछ प्रज्ञावानमें शील गुण आ सकता है।

बुद्ध—क्या शील और प्रज्ञाको तुम जानते हो?

सोणदण्ड—नहीं गौतम! मैं आपके पास इसीको जाननेकी इच्छा करता हूं।

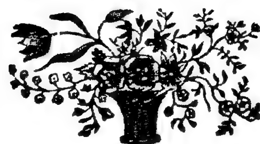
इसके अनन्तर बुद्धदेवने अपने धर्मोपदेशमेंसे दो मुख्य तत्व शील और प्रज्ञाका स्वरूप कहकर समझाया।

महात्मा बुद्ध ब्राह्मणोंके द्वेषी न थे बल्कि ब्राह्मणोंको अपना यथार्थ भान करानेके लिये विष्णुके अवतार थे जिन्होंने यह बतानेकी चेष्टा की थी कि ब्राह्मणोंके पांच लक्षणोंमें प्रज्ञा और शील यही दो मुख्य गुण हैं, और ब्राह्मण विद्यार्थियोंमें ये दोनों बातें अवश्य आ

जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त बुद्धदेव यह भी निर्णय करके बताते हैं कि दोनों हाथ इकट्ठे किये विना धुल नहीं सकते तथापि शील (Character) मनुष्यका दाहिना हाथ और प्रज्ञा (Wisdom) बांया हाथ है।

* * * *

जो इस लोकमें शुद्ध अग्निके समान पापसे रहित होनेके कारण पूजित है विशेषज्ञ उसे ही ब्राह्मण मानते हैं। जो स्वजनादिमें आसक्त नहीं है और संयमशील होकर कष्टमें शोक नहीं करता तथा महापुरुषोंके वचनामृतोंमें आनन्द मानता है वही ब्राह्मण है। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण मैल रहित होता है उसी प्रकार मल और पापसे रहित तथा राग-द्वेष और भयसे पर रहनेवाला ब्राह्मण होता है। जिस सदाचारी, तपस्वी, दमितेन्द्रियने तपसे मांस और लहूको सुखा दिया हो, कषायोंको जीतकर जो शान्ति प्राप्त है मैं उसे ब्राह्मण समझता हूं।



शराब-महात्म्य

काशीपुर नरेशका दर्बार अमीर-उमराओंसे भरपूर है। न्याय-इन्साफ होनेके अनन्तर भाट-चारण महाराजका यशोगान करने लगे हैं। कविताओंमें महाराजा चक्रवर्ती सिद्ध किये गये हैं। बलमें भीमको उपमामें रक्खा गया है। तेजमें सूर्यको आकाशका प्रवासी बनाकर मानो उसे आकाशमें टांग दिया गया। पवित्रतामें सिद्धहस्त बनानेके लिये चांदको कलंकित किया गया तथा पृथ्वीमें महाराजके भयसे ही भूकम्प होता है। वनस्पतियां महाराजके कृपाजलसे ही हरी-भरी रहतीहैं। समुद्रने तरंगोंकी भुजायें महाराजके चरण छूनेके लिये उठाई हैं। इस प्रकार कवियोंने जमीन और आस्मानके कुलाबे मिला दिये मगर राजाके होठोंपर मुस्कुराहट न आई। उसका मुखमण्डल कमलकी तरह न खिल सका, उसे ये कवितायें उड़दका छिलके के समान भद्दी नीरस और अरुचिकर प्रतीत होती थीं।

राजा—कौटुम्बिक पुरुष! राज-ज्योतिषीजीको विप्रपल्लीसे शीघ्र बुलाकर लाओ।

* * *

राज्य-ज्योतिषी नहा धोकर, शुद्ध वस्त्र पहिनकर, भोजन पानसे निवृत्ति होकर, भविष्य फल आदि उचित सामग्रीसे कक्षा भरपूर करके नंगे सिर ही राज दर्वारमें आकर उपस्थित हो गये तथा राजाजीको स्वस्ति कहकर यथा स्थान बैठ गये।

राजा—आजकल मुझे यही चिंता सताती रहती है कि पिताके दिये राज्यको अबतक बढ़ा न सका हूं। इस समय तक १८ पुत्रोंका बाप होते हुए भी एक माण्डलिक राजाकी हैसियतमें भी न रहूं यह मेरे लिये इस समय असह्य है। अतः कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे मेरा राज्य, कोष, राष्ट्र आदि सभी कुछ वृद्धिको प्राप्त हो।

ज्ञानगर्भ—आपके प्रश्नको मैंने खूब ही सोच विचार लिया है। मगर आपके जन्मांगमें तो ३ ग्रह उच्च राशिपर हैं। चक्रवर्ती योग है। तौ भी आपके पुत्र यद्यपि संख्यामें १८ हैं; परन्तु इनमें भाग्यशाली कोइ नहीं है। पूर्ण दरिद्र योग पड़ा हुआ है। इनका दुर्भाग्य आपके शुभ ग्रहोंके फलको रोक रहा है। उदय नहीं होने देते। अतः राजन्, मैं स्वयं चिन्तित हूं।

राजा—शास्त्रोंमें मूर्खको छोड़कर शेष सबकी औषधि बताई है। अतः क्या इसका कुछ प्रतिकार आपको याद नहीं है?

ज्ञानगर्भ—क्यों नहीं महाराज! कलहवर्द्धक आचार्य, ज्ञान शून्य गुरु, दरिद्र भाई, भाग्यहीन सन्तान विष वृक्षकी तरह उच्छेद

करने योग्य हैं। मगर इन्हें नष्ट करनेवालेको अपना दिल १० इञ्चका बनाना चाहिये।

राजा—मुझे आपपर पूर्ण विश्वास है, जो भी इलाज बतायेंगे निर्मोह होकर करनेको तैयार हूं।

ज्ञानगर्भ—अच्छा तो सुनिये महाराज! महाभारतमें लिखा है कि दुर्योधनके जन्म लेते ही काली आंधी आई, भूकम्प हुआ, आकाशमें तारे टूटने लगे, दिनमें उल्लू बोला, राज्यछत्रका डंडा टूट गया। तब राजा धृतराष्ट्रने घबड़ाकर कोष्टुकी नैमित्तिकको बुलाकर पूछा था कि यह लड़का गांधारीको पहले पहल हुआ है। मगर अभीसे अपशकुनोंका जमघट शुरू हो गया है। जरा इसका भाग्य तो विचारो, कैसा है। जो हो, सच बताओ। शर्म न करना, सत्य बोलना।

पंडित—राजन्! जरा विदुरको भी बुलवा लीजिये, वे बड़े चतुर राजनीतिज्ञ और भविष्यज्ञ भी हैं। हमारी भूलका शोधन उनके द्वारा होता है। थोड़ीसी देरमें विदुर भी आ गये। उनके सन्मुख ज्योतिषियोंने परामर्श करनेके बाद विवेक और विनयसे यह कहा कि—

राजन्! आपके कुलमें यह कांटेकी तरह खटकनेवाला बालक पैदा हुआ है। इसीके कारण घरमें कुसम्प और आपसी द्वेष भर जायगा। व्यसनका दावानल सुलगेगा। परस्पर एक दूसरेको घातक दृष्टिसे देखेगा। इसीके आरंभसे संघर्ष पैदा होगा, घरमें हत्यायें होंगी। खूनकी नदियां बह चलेंगी, कुल नष्ट हो जायगा। यह

सत्य है और नग्नसत्य है इसे लिख लीजिये, तिल मात्रका भी फर्क न होगा।

धृतराष्ट्र—बड़े भयानक और नीच तथा पापक ग्रहमें जन्मा है। भला खैर, इसका कोई उपाय ऐसा बताइये जिससे क्रूरग्रहका दोष शांत हो।

सबके सब पंडित—हां यदि इसको अभी मरवा डाला जाय तो ग्रह इसका रुधिर पीकर शांत हो सकता है। यदि हमारा विश्वास न करते हों तो भक्त विदुरकी सम्मति लीजिये, देखो, यह क्या कहता है।

विदुर—ये सब ठीक कहते हैं। वह सोना किस कामका जिससे कान टूट जाय, वह गुरु किस कामका जिसमें शांति भंग हो जाय वह स्त्री किस काम की जिससे घर कुट्टनियोंका अड्डा बन जाय, वह पुत्र किस काम का, जिससे कुल नाश होकर खप जाय! यदि आपको कुल, राष्ट्र, सम्पसे प्यार है तो पुत्रको मार डालना अच्छा होगा। कुपुत्र, कुगुरु, कुधर्म, कुदेव, कुस्त्रीका पक्ष कभी न किया जाय। परन्तु पुत्रकी ममता बुरी होती है। इसका छोड़ना सहज नहीं है। धृतराष्ट्रने किसीकी न मानी और वह आगे चलकर कुलके लिये किस प्रकार घातक सिद्ध हुआ, यह संसारसे छुपा नहीं है।

इसी भांति राजन्! आप भी अपने पुत्रोंका ममत्व रक्खोगे तो आपको धृतराष्ट्रसे कुछ कम पश्चात्ताप न उठाना होगा। इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हूं।

* * * *

गरीब और अन्त्यज बखेरमें पैसे, रुपये और सोने तकके सिक्के लूट रहें हैं। जिसकी भूमिपर जरा भी निगाह पड़ जाती है उसीके वारे न्यारे हो जाते है। "मिट्टीमें हाथ डालकर सोना पाया" वाली कहावत चरितार्थ होने लगी है।

इतनेमें चलो, हटो, बचो, रास्ता छोड़ो की आवाज आने लगी। देखते ही देखते बड़ी सुन्दर पालकी हजारों सैनिकोंसे परिवृत्त होकर आई और चली गई। इसके पीछे सैकड़ों बराती सुवर्णमणि भूषणोंसे भूषित मानो चांदके आस-पास तारोंकी सी छटा दिखा रहे थे। इनके हाथमें नंगी तलवारोंकी पंक्तियां दामिनी-सी चमककर चंडिकाकी जिह्वाकी तरह दीख रही थी। हाथियोंके शरीरकी कालस वायुयानमें बैठे हुए विद्याधरोंको वायुयानसे ऐसी मालूम होती थी मानों आकाश भूतलपर आ लगा है। घोड़ोंकी टापोंसे रेतने आकाशमें जाकर आकाशके दीपकको घेर लिया जिससे नीचेवालोंको यह भ्रम होता था कि पृथ्वीका आधा भाग कटकर ऊपर चला गया है।

राजा गरुड़नारायण अपने महलसे यह सब रचना देखकर प्रसन्न चित्त होकर प्रधानसे बोले कि—महामात्य! यह किसका उत्सव है?

महामात्य—पृथ्वीनाथ! सेनानीके पुत्रका विवाह है। यह उसीकी बरात जा रही है। जैसा लड़का योद्धा है भाग्यसे उसे वैसे ही वीरांगना रमणी मिलेगी। वह दो मन लोह बांधकर रणांगणमें आनेवाली वीर युवती सुनी जाती है। यह क्षत्रिय कुलके गौरवको

चार चांद लगा देने जैसी बात है। आज वे दाम्पत्य जीवनमें बंधनेवाले हैं। उसीका यह जुलूस निकाला गया है।

राजा—(आंसू पोंछकर) यदि कोई मेरा पुत्र बच रहता तो इससे भी अधिक सुन्दर विवाह महोत्सव मनाया जाता। परन्तु क्या करूं मैंने स्वयं ही अपने हाथों कुल्हाड़ी चला दी है। उनके कहनेसे १८ के १८ यमकी भेट कर दिये जिस आशासे यह कुल निकन्दन किया गया था वह आशा भी तो पूर्ण न हो पाई। हाय! इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः।

प्रधान—राजन्! खेद मत कीजिये। अत्यन्त लोभका यही परिणाम है। पापका बाप लोभ होता है। यह महापुरुषों तकसे भी अकृत्य करा डालता है। इसीसे आज संगठनकी माला टूटी पड़ी है और प्रेमके मनके दूर-दूर बिखरे पड़े हैं। तृष्णा और वासनाके वश होकर मनुष्य धर्म और अध्यात्मका भी गला दबा सकता है। इसीसे मनुष्य नृशंस होकर लहूकी धारासे पृथ्वीको रंग डालता है। राजन्! जिन-जिनको आपने लोभ देकर आज्ञा दी थी उन्होंने आपके १७ पुत्रोंका अन्त कर दिया है और अन्तिम पुत्र मेरे सुपुर्द किया गया था, परन्तु अपराध क्षमा हो, मैंने उसे न मारकर अपने घरमें छिपाकर रख लिया है। उसको अध्ययन कराता हूं। भूमिगृहमें यथोचित पोषण होता है। धनुर्वेद विद्या विशारदका पद पा चुका है। आज्ञा हो तो अभी उपस्थित किया जाय।

राजा प्रधानको छातीसे लगाकर बोला कि महामात्य! तू मेरा सच्चा राजसेवक है। मेरे वंशकी रक्षा तूने की। तुझे अपना सर्वस्व

देकर भी इस ऋणसे हल्का नहीं हो सकता। अतः वरदान मांग सब कुछ तेरा ही है।

प्रधान—राजन्! यह तो आप जानते ही हैं कि हमारी श्रावक जाति है। हम कुछ दिनसे मध्यप्रदेश छोड़कर यहां आ बसे हैं। यहां हमारे धर्मगुरु न जाने कबसे आना बंद कर चुके है। इससे हमारा धर्म लुप्तप्राय हो चुका है। इसीसे हमें लोग शराकके साथ मांझी शब्द अन्वयीभूत करके शराक मांझीके नामसे पुकारते हैं। अतः धर्मगुरुओंके अभावमें एक पुरोहित मांगता हूं जिसके द्वारा हम अपना क्रिया कर्म करा सकें। क्योंकि अन्य देशीय होनेके कारण हमें कहीं लोग भी अस्पृश्य कहने-समझने न लग जायँ। यदि बिप्रदेव हमारे घरमें आने लगे तो हम स्पृश्य रह सकते हैं।

काशीपुर महराज गरुडनारायणजीने कहा कि तथास्तु। जिस श्रावकजातिके धर्मगुरु बिहार, बंगाल, उड़ीसामें पुष्कल संख्यामें बिचरते थे आज उनके अभावमें बिहार और बंगाल तथा कलिंग देशसे आपका प्यारा जैनधर्म लुप्त हो चुका है। यह हमने वीर पिताके बाद कपूतपना किया है जो पितामहकी धर्म भूमिको धर्ममें स्थिर न कर सके। गुरुमोह, शिष्य मोह, देशमोह जैसे अप्रशस्त मोह जालमें फँस कर वीर परमात्माके देशको धर्म शून्य करनेवाले हमसे कपूतको छोड़-कर और कौन हो सकता है? उस भग्न शेष श्रावक जातिमें धर्मगुरुका अभाव होते हुए भी इस शराक जातिमें अहिंसा धर्मका कुछ शेषाव-शेष अवश्य रह गया है। यदि मुनि समाज इस देशमें आकर विचरने लगे तो शराकसे श्रावक बनाये जा सकते हैं। यदि जैनमिशन

जैसी संस्था स्थापित की जाय और उनमें प्रचार किया जाय तथा उन्हें हमारे श्रावक फिरसे गले लगाकर अपना लें और उनके लिये जैन-विद्यालय खोल दें तो अब भी आपकी संख्या दो-चार वर्षके परिश्रमसे पांच लाखकी जगह छ लाख बन सकती है जो इस टूटे-फूटे समयमें ६ करोड़ जितना काम दे सकती है। आशा है, धनी-मानो समाजके नेता इस ओर अवश्य ध्यान देंगे और १०-२० मुनि बंगाल और विहारकी ओर अवश्य विहार करनेका उत्साह पैदा करेंगे।



पराई पीर

वह कंधेपर धनुष लगाये हुए है और तरकस है पिछले भागमें। इसके पैने २ शिलीमुख (बाण) यमसे मुलाकात करा देते हैं। इसकी आकृति क्रूर है। भावभंगी है रीछकी-सी डरावनी। इसके हाथपर बाज बैठा है, हाथमें चमड़ेका दस्ताना फँसा रखा है। कितना खूंख्वार शिकारी है। इसीसे भयानक वनमें पक्षी-समाज कोलाहल मचाने लगा है। सब अपनी-अपनी जान छिपाये हुए झुर्मुटोंमें जा छिपे हैं। पर बेचारा कपोतराज बड़ी आपत्तिमें है। मारे फिकरके परेशान हो गया है। प्यारी कबूतरीकी तलाशमें सरल गतिसे उड़ा जा रहा है। आकृति कितनी मोहक और भोली है। रंग बिल्कुल सफेद और लाल पैर कितने सुन्दर हैं। विधाताने मानों फुर्सतमें बैठकर बनाया है। इसीसे मानो संसार भरकी स्वच्छताको इसीकी पांखोंमें व्यय कर दिया है। पर हाय! काल व्याधकी दृष्टि इसपर पड़ गई है। यह लो, इस गरीबके पीछे बाज भी छोड़ दिया है। आह! मानों सरपर मौत मँडराती आ रही है। बिल्कुल बेबस हो चला

है। जान बचानेके लिये कहां छिपें ? हिम्मत बांधकर अबकी बार तिर्छी चालसे शहरकी तरफ उड़ चला है। खाई, कोट, किला, बाग-बगीचा सबको लांघता चला गया, पर इसे अपनी नन्हीं-सी जान बचानेको कहीं जगह सूझ न पड़ी। हाय ! इसे अब कहीं त्राणके लिये स्थान नहीं। एक तरफ दम फूल रहा है, श्वासपर श्वास आ रहे हैं। कलेजेकी धड़कन जोरोंपर है। दूसरी ओर शत्रु पंजा फैलाये सन्निकट आनेमें दत्तचेष्ट है। कहां जाय किसके पास जाकर फर्याद करे। सबका पालक राजा होता है, यही सबका न्याय अपने ऊंचे आसनपर बैठकर करता है। इसीसे यह शरीरधारी न्याया-वतार होता है जिसकी सभामें सबको दाद मिलती है। दीनबन्धु यही है, उसीके पास चल, तेरा वही सच्चा मित्र है—यही आस बांधकर राजसभाकी ओर मुड़ा। पर बाज ! वह तो बहुत निकट आ लगा है, पकड़ा ही चाहता है। अबका वार खाली गया, इस चक्करदार गतिसे जानका पलड़ा भारी हो गया है। यह लो, दम टूट ही गया और आकाशसे झम्पा लेकर पृथ्वीकी ओर गिरा कि एक आनमें अपनेको किसीकी सुकुमार गोदीमें पाया, जिसके हाथोंका स्पर्श बता रहा है कि अब यहां किसका डर है ?

* * * *

व्याध—प्रजापालककी जय हो ! राजन ! भूखा हूं, मेरा शिकारी बाज़ भी भूखा है, यही एक शिकार ४ घण्टेमें कठिनाईसे हाथ लगा है। नाथ ! प्रदान कर दीजिये, लेकर अभी चला जाऊंगा।

महाराजा मेघरथ—भाई ! रोटी, दाल, चावल, भुंगड़े, हलवा, सुहाली, मट्ठा, मिठाई, लड्डू, पेड़े आदि अभी मँगाए देता हूं। खाकर तृप्त हो जाओगे। पर इसे न मांगो, यह मेरी शरणमें है। यह सारे राज्यसे भी अदेय है।

व्याध—न्यायशील सरकारकी दुहाई है ! मुझे बचपनसे मांस ही प्रिय है। इसे न छोड़ सकूंगा। मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये विवश हूं, पर यह शिकरा मांसके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता। सरकार हमसे भूखोंको यही सदाव्रत दे दीजिये। इस दरबारमें न्याय होता है। आपने ही यहां धर्मके कांटेमें न्याय और सत्यको तौलकर बताया है। कबूतरको कृपया अर्पण कीजिये, आपकी आत्माको अनन्त पुण्य होगा। देर हो रही है, भूख कलेजा काट रही है। आह ! बड़ी भूख लगी है (यह कहकर एक ओर गिर पड़ता है)।

महाराजा मेघरथ—(कबूतरकी ओर देखकर) अहह ! बेचारा हथेलीपर रक्खे हुए जुबागलकी तरह किस प्रकार कांप रहा है। कलेजेको तो देखो, वायुसे प्रेरित ध्वजाकी तरह जल्दी-जल्दी हिल रहा है। शरीरमें लरजा बार-बार आता है। कातर दृष्टिसे देख रहा है, कितना विह्वल हो उठा है। शायद समझ रहा है कि संसारमें कोई मदद करनेवाला व्यक्ति और निर्भय स्थान है तो यही है। यही ईश्वर परमेश्वर सर्वशक्तिमान् परब्रह्म है। अशरणको निभाना ही भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग और आत्म-योग है। इसीसे राजाके शरणमें बहुत ऊंचेसे आकर पड़ा है।

हाय ! अपनी शरणभूत गोदमेंसे निकालकर किस प्रकार अलग कर दूं। कभी नहीं, कभी नहीं, महा अन्याय होगा। बेचारा कपड़ोंमें छिपा जा रहा है। बालककी तरह दामन पकड़े हुए है। ओह ! अपनी-अपनी जान सबको कितनी प्रिय है। इस प्रकारकी जानको बचाना ही यज्ञ, तीर्थ, संयम, तप और चरित्र है। क्षत्रिय धर्मका अर्थ समझमें आ रहा है कि शरणमें आनेवालेकी लाज अवश्य रक्खी जाय। यह शरणमें भी किसके आया है, किसी बनिए-बक्कालकी पनाहमें नहीं, बल्कि एक क्षत्रिय और राजाकी। राजाका चेहरा मारे प्रसन्नताके जपाकुसुमकी तरह लाल सुवर्णसा उद्दीप्त हो उठा और हुंकार मारकर गरज उठा कि 'क्षतात्त्रायत इति क्षत्रियः।' इसे दगा नहीं दूंगा। अपनी जानसे अधिक प्यार करूंगा। शरणमें आयेको धोखा देना ऋषि-हत्यासे भी बढ़कर है। इसकी जान अपनेसे भी अधिक प्यारी मालूम देने लगी है। अपनेको इसपर न्यौछावर कर दूंगा, पर इसे आंच न आने दूंगा। प्यारी आत्मा ! घबरा मत। वचन देता हूं, तेरा कान तक गर्म न होने पायगा।

* * * *

व्याध—सरकार ! मेरी वस्तु न्यायसे दिलाइये, पेटमें चूहे कूदने लगे हैं, भूखसे शरीर चूर-चूर हो रहा है।

राजा—यह वस्तु तेरी नहीं है, प्रकृति माताने इसे अधिक सताया जानेपर मुझ तक पहुंचाया है, त्राण-शरण वस्तु सब वस्तुओंमें अदेय है ? अतः न दूंगा। इसके अतिरिक्त पैसा, रुपया, मिठाई, मकान गांव, जमीन, शहरसे राज्य और राष्ट्र तक इसके ऊपर न्यौछावर

है। इनमेंसे तुझे सब कुछ देय है, सब कुछ ले सकता है। मगर पुत्रकी भांति अंकमें रहनेवाला कपोतराज सब प्रकारसे अदेय है। अपना शरीर भी इसके बचानेमें तुच्छ समझता हूं, आज इस न्यायालयमें यही न्याय तोला गया है। अपने शेष जीवनके थोड़ेसे भागके लिये उतरती जवानीमें इस छोटेसे पक्षीपर अन्याय न होने दूंगा। इसका भयंकर शाप मुझे और राष्ट्र तकको भस्मसात् कर सकता है। अतः यह असह्य है। अन्याय और फिर गरीबपर पड़ जाय तो नरककी आग कभी न छोड़ेगी। राज और शरीर मेरी अन्तिम देय वस्तु है। पर इससे द्रोह न हो पायेगा।

व्याध—बलिहार जाऊं महाराज मेरे! आपको यह तनिक-सा पक्षी कितना प्यारा हो गया है! अतः अब मैं भी आपका जी अधिक न सताऊंगा, इसके बराबर किसी अन्यका मांस मँगा दीजिये। मुझे अब इसके लेनेका हठ न होगा। पर तौलकर कबूतरके बराबर मांस दिलवाइये। बस यह बला अभी टल जाय।

राजा—जानें सबकी बराबर हैं, जीव होनेके नाते सब जीवित रहना चाहते हैं। न मरना किसीको प्रिय है न आपत्तिका झेलना। अतः इतना मांस अपने शरीरमेंसे निकाल कर अभी दे सकता हूं। शीघ्रता करो, मेरे शरीरका मांस स्वीकार है?

व्याध—नीची निगाहसे बोला, राजन्! पापी पेटके लिये सब कुछ भी स्वीकार है।

मेघरथ राजा—कौटुम्बिक पुरुष! जाओ भणे! तराजू और

छुरा कहींसे ले आओ! एक पलड़ेमें कबूतर होगा और दूसरेमें चढ़ाऊंगा काटकर अपनी जंघाका मांस!

* * * *

महारानी—(महाराजाका हाथ पकड़ कर) नाथ! यह क्या कर रहे हो, आप मृत्युसे लड़ने जा रहे हैं? मेरी इस युवावस्थापर क्या आपको कुछ भी तरस नहीं आता। एक आपके ऊपर तो मेरा जीवन और रूप-सौन्दर्य निर्धारित है। आपके पीछे हमारा सब कुछ मिट्टीमें मिल जायगा।

महाराजा मेघरथ—मेरा शरीर एक मुट्ठी खाकका पुतला है, मरनेपर सब कुछ मिट्टी है, किसी काम न आयगा। सबको १० दिन आगे-पीछे मौतके घाट अवश्य उतरना है। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। पराई पीरको कोई देखकर भी नहीं लखता। क्षत्रिय वही है जिसके सिरमें पराई पीर समाई हुई हो।

राजपुत्र—पिताजी! इस छोटेसे पक्षीके पीछे अपनी जान क्यों मुफ्तमें गवां रहे हैं? इसे उड़ा क्यों नहीं देते।

महाराजा मेघराज—पुत्र! राजधर्म दीनका रक्षक तथा न्याय-पारीण होता है। शरण आये हुएकी लाज रखना ही क्षत्रियका पहला कार्य है। यदि इस दर्बारमें न्याय न हुआ तो क्षात्र-धर्म नष्ट हो जायगा।

प्रधान—राजन्! अभी आज्ञा कर दें तो इसपर कानूनी काय-वाही की जाय। इसे किसीके साथ बलात्कार करनेका क्या अधिकार है! अभी हथकड़ियां पहनाकर चालान किये देते हैं।

शिकार खेलनेका अभी मजा आ जाय ! मात्र एक बार आपकी जिह्वा हिल जानी चाहिये।

महाराजा मेघरथ—भाई, मुझे न्याय करना है, अन्याय नहीं। अपनी शरीरकी बलि दिये विना न्यायका आसन ऊँचा नहीं उठ सकता। शरीर अनित्य है, सच्चा मित्र कोई नहीं बनता। थोड़ेसे जीवनके लिये इस बाजीको न हारना चाहिये। क्यों न मैं पक्षी पर कुछ उपकार करता चलूं !

व्याध—राजन् ! क्षुधाकी आग धधक रही है। तनका मांस जल्दी दे दें तो किसी तरह पारणा हो।

राजा—बताओ, इस छुरीसे कहांका मांस काटकर तराजूमें चढ़ाऊँ ?

व्याध—भक्तवत्सल ! आपके न्यायकी जय हो ! एक व्याध जैसे तुच्छ व्यक्तिपर आपकी कितनी दया और उदारता है मेरे मुखमें जिह्वा इतनी योग्यता नहीं रखती जिससे आपके न्यायकी प्रशंसा की जाय। राजन ! जंघाका मांस मुझे अत्यन्त प्रिय है उसे ही काट डालिये।

राजाने जंघाका मांस काटकर कांटेमें रखकर तोला; मगर तोल पूरा न हुआ। तब दूसरी जंघाका मांस छीलकर उसमें रखा तब भी वज़न पूरा न हुआ। लोगोंको आश्चर्य था कि यह कबूतर है या पारा ?

व्याध—महाराज पूरा तोलकर दें ?

राजा—भाई, पता नहीं, इतना मांस चढ़ा दिया, पर तोल पूरा

ही नहीं होता। अतः कबूतरके बदलेमें स्वयं इस पलड़ेमें बैठ जाता हूं। यह कह राजा तराजूके पलड़ेमें जा बैठा।

इतनेमें ठंडी हवा चलने लगी, बादलोंसे आकाश घिर आया। पानीकी बून्दोंके साथ-साथ राजाके सिरपर सुगन्धित फूलोंकी भी वर्षा होने लगी। व्याध एक सुन्दर देवके रूपमें आ गया, और बोला कि 'अहिंसा परमधर्मकी जय!' यही महान् आत्मा भगवान शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर इसी अहिंसा तपके प्रभावसे हुए।

[२]

वाराणसी निवासी गंगाको घरकी बावड़ी समझकर सदैव उसीमें जलकेलि करने आते हैं। इसकी गलियां तंग अवश्य हैं; पर मनुष्योंके हृदय नहीं। वे तो विशाल और उदार प्रमाणुओंके बने हैं। जैसे लोग धनी और सुखी हैं वैसे ही भिक्षुओंको सब कुछ देनेमें श्रद्धालु भी हैं उनके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। जिनमें दानशील मनुष्योंकी पंक्तियोंमें उस सुप्रिय और सुप्रिया नामक श्रद्धाशील दम्पत्तिका नम्बर सबसे पहला है। सुप्रिया सदैव बौद्ध भिक्षुओंकी तन, मन, धनसे सेवा करती है। नित्यके नियमानुसार वह एक दिन इसीपतन-मृगदावमें जाकर एक विहारसे दूसरे विहारमें, तथा एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमें जाकर भिक्षुओंसे पूछती थी कि—

भन्ते! कौन रोगी है? किसके लिये पथ्यके लानेकी आवश्यकता है?

उस समय एक भिक्षुने किसी भयंकर रोगको उपशमानेके लिये औषध ली थी, तब उसने सुप्रियासे कहा कि—

उपासिके ! भगिनी ! मैंने जुलाब लिया है; इससे मुझे पथ्यकी आवश्यकता है।

अच्छा आर्य ! अवश्य लाया जायगा, कहकर घर आकर नौकरको आज्ञा दी कि—

जाओ भणे ! कहींसे तैयार मांस खोज लाओ।

अच्छा आर्ये ! कहकर उस पुरुषने वाराणसीके सब बाजारोंमें तलाश किया; मगर तैयार मांस न पा सका। वापस लौटकर अपनी मालकिनसे बोला कि— आर्य्ये ! तैयार मांस नहीं है। आज कोई जीव नहीं मारा गया।

सुप्रिया—भिक्षुसे कह आई हूं कि पथ्य बनाकर अवश्य पहुं-चाऊंगी; कुछ भी हो, मांस नहीं मिला तो क्या हुआ, पर पथ्य तो भिजवाऊँगी ही। यह निश्चयकर पोत्थनिका (मांस काटनेका शस्त्र विशेष) लेकर जंघाका मांस काट डाला और सोरवा पकवा-कर दासीको दे दिया, और कहा कि हन्त ! जे ! इस शोरबेको लेकर अमुक भिक्षुको अमुक विहारमें दे आओ जिससे उसे आरोग्य लाभ हो। यदि मेरे विषयमें पूछे तो कह देना कि बीमार है। यह कह दासीको विदा किया, और आप चादर ओढ़कर चारपाईपर लेट गई।

* * * *

अपनी दुकानका व्यापार सम्बन्धी सब काम निपटा कर संध्या होते-होते सुप्रिय उपासक (बौद्ध) घर आया और सुप्रियाको न पाकर अपनी दासीसे पूछा कि सुप्रिया कहां है ?

दासी—आर्य ! इस कोठरीमें लेटी हुई हैं।

उपासक सुप्रिय अपनी प्यारी सुप्रिया उपासिकाके पास आकर बोला कि—

सुप्रिय—कैसे लेटी है ?

सुप्रिया—बीमार हूं।

सुप्रिय—तुम्हें क्या बीमारी है ?

सुप्रियाने आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया।

सुप्रिय—अद्भुत ! आश्चर्य ! कितनी दयालु तथा श्रद्धालु है यह जिसने जांघका मांस देने तकमें भी संकोच न किया ! कितनी कठिन अग्नि-परीक्षा है ! सत्य है, श्रद्धाशीलके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

* * * *

सुप्रिय—भन्ते ! भिक्षुसंघ सहित कलका मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।

तब बुद्धने मौन होकर स्वीकृति दे दी। इसके बाद अगले दिन संघ सहित बुद्ध सुप्रियाके घर पधार गये। परन्तु सुप्रियाको घरमें न देखकर पूछा कि सुप्रिया कहां है ?

सुप्रिय—भगवन ! वह बीमार है।

बुद्धजी—उसे बुलाना चाहिये।

सुप्रिय—इतनी अशक्त है तथा बीमारी इतनी भयंकर है कि आ नहीं सकती।

बुद्धजी—कन्धेका सहारा देकर ले आओ।

सुप्रिय उपासक अपनी दानेश्वरी भगवती सुप्रिया प्राण-प्रिय पत्नीको कन्धेका सहारा देकर धीरे-धीरे बाहर ले आया। बुद्धने एक ही बार कृपा दृष्टिसे देखा कि घाव तुरंत अच्छा हो गया। धार्मिक कथा कहकर बुद्ध अपने विहारमें आ गये।

* * * *

आनन्द ! भिक्षु संघको एकत्र करो।

आनन्दने क्षण भरमें भिक्षु संघको एकत्र कर दिया।

बुद्ध—भिक्षुओ ! सुप्रिया उपासिकासे किसने मांस मांगा था ?

एक भिक्षुक—भगवन् ! मैंने मांस मांगा था।

बुद्ध—क्या लाया गया भिक्षु ?

वह—लाया गया तथागत।

बुद्ध—क्या खाया तूने भिक्षु ?

वह—हां खाया मैंने।

बुद्ध—कुछ समझमें आया ? कुछ पहचानमें आया ?

वह—नहीं।

बुद्धने फटकारा और कहा कि बगैर समझे-बूझे ही मांस खा लिया ? मूर्ख ! मोघ पुरुष ! तूने मनुष्यका मांस खाया ?

फटकार कर इतने नियम बनाकर भिक्षुओंको सुनाये—

बुद्ध—भिक्षुओ ! मनुष्य इतने श्रद्धालु भी हैं जो अपने शरीर तकका मांस भी दे देते हैं।

(१) भिक्षुओ ! मनुष्यका मांस न खाना चाहिये। जो खाय उसको थुल्लच्चयका प्रायश्चित।

(२) उस समय राजाके हाथी मरते थे, और दुर्भिक्षके कारण लोग हाथीका मांस खाते थे। लोग भिक्षुओंको भी हाथीका मांस देते थे, और भिक्षु हाथीका मांस खाते थे। अतः लोग सुनकर फिर हैरान रह जाते थे कि भिक्षु हाथीका मांस खाते-पीते हैं। तब बुद्धने भिक्षुओंको फटकार कर कहा कि जो हाथीका मांस खाय उसे दुक्कटका दोष लगे (यह बुद्ध भिक्षुका सबसे छोटा प्रायश्चित्त है)।

(३) कुत्तेका मांस भी खाते थे भिक्षु।

(४) घोड़ेका मांस भी भिक्षु खाते थे।

(५) सांपका मांस भी बुद्ध भिक्षु खाते थे।

(६) शिकारी द्वारा मारे हुए सिंहका मांस भी खाते थे।

(७) बुद्ध भिक्षु बाघका मांस भी खाते थे।

(८) बुद्ध भिक्षु चीतेका मांस भी खाते थे।

(९) भालूका मांस भी खाते थे।

(१०) लकड़बग्घेका मांस भी खाते थे।

बुद्धने इन सबके लिये ही मना कर दिया और कहा कि मात्र इनका मांस खानेपर दुक्कटका दोष आयेगा।

(विनय पिटक—पृष्ठ २३१ से २३३ तक)

नोट—इस कहानीका मुकाबला करनेसे बुद्धका सर्वज्ञत्व व अहिंसाका स्पष्ट पता लग जाता है। —लेखक।

खद्दरकी साड़ी

आज इस नव पति-पत्नीमें योंही ज़रासी बातपर मनमुटाव हो गया। बात बहुत मामूली थी। वह थी साड़ीके प्रसंगकी बात। पत्नीकी इच्छा थी कि अबसे साड़ी खद्दरकी आवें।

स्वामी—खद्दरकी साड़ी! वह इस गुलाबी और सुकुमार शरीर पर शोभा न देगी। इस चन्द्रवदन पर बनारसी रेशमी साड़ी अपने भाग्य को सराहेगी। बस तुम्हारे लिये वही मंगवाई गई है। आज कुछ मालूम होता है, तुम गांधी जी का लेक्चर सुन आई हो। इसी से यह खद्दरकी सनक सवार है!

पत्नी—कुछ भी समझो, बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मुझे अब मुर्दों से भय लगने लग गया है। ४०००० हजार मृतक कीटाणुओंका पाप रूप भार अब मैं एक पौंड रेशमके रूपमें नहीं सम्हाल सकती। रहा विलायती कपड़ा, उसमेंसे चर्बीकी इतनी खराब गन्ध आती है कि आप निश्चय समझें, मारे बदबूके दिमाग फटने लगता है। आत्मा तड़प उठती है, मुझे अब स्वदेशी मिलोंके कपड़ोंसे घृणा

हो उठी है। वे अब कभी पसंद न आयँगे। मुझे तो शृंगार और फसन रखनेवाली ललनायें नंगी चुड़ैलोंसे भी बुरी लगती हैं। अब तो अपने देश ही की सादी वेश भूषा और स्वदेशी वस्त्र ही पसंद आने लगे हैं। इस फैसनसे मुझे जो धोखा हुआ है, उसका मुझे आन्तरिक दुःख है। पुरुषोंने सुन्दर वस्त्र और भूषणोंका लालच देकर हमको काठकी पुतली बना छोड़ा है। मगर अब उनकी हां में हां मिलाकर उनके सामने नाच-गान करनेका समय लद गया। अब तो हम स्वावलम्बिनी बनेंगी। अपने सत्य और शीलका पालन स्वयं करके अपनी आत्मरक्षा आत्मिक बलसे करेंगी। अब हम पुरुषोंकी सहायता स्वप्नमें भी न चाहेंगी।

पति—(हँस कर) अहा हा ! अब तो आप देशभक्तिके गीत आलापने जा रही हो। मगर आपकी प्रतिज्ञायें भीष्म प्रतिज्ञायें नहीं हैं। दश दिनमें बरसाती नालेकी तरह उत्साह रुपयेमें दमड़ी भर भी न रह पायेगा। मैं भी देखता हूं कि यह हठ कै दिन तक चल सकेगी।

पत्नी—अच्छा ! आपको स्वाभिमानिनी अबलाओंका तिरस्कार करना भी आता है ! जाओ, आजसे हमारा आपसे सोशल बायकाट ! जहां तक घरमेंसे ये विलायती कपड़े और टोड़ीपन न निकलेगा वहां तक बोलचाल बन्द !

† † † †

१० दिन बीत गये, यह दम्पति आपसमें अब बिल्कुल नहीं बोलते। एक तरफ कुर्शी हठ है, दूसरी तरफ नारी हठ है। क्या छोटी सी बात

थी, जिसपर बोलना तक बन्द हो गया। पर यों सोचो तो बात बहुत बड़ी भी थी। एक ओर पतन था और दूसरी ओर था उत्थान। देखिये, जीत उत्थानकी किस भांति होती है, इस रस्सा कशीने १० दिन तक अपना पूर्ण बल खर्च किया है। पर अपने-अपने पणसे कोई एक इञ्च भी हटनेको तैयार नहीं है। मौनकी शृंखलामें बंध जानेसे घरके बहुतसे कामोंके बिगड़नेमें एक दूसरेको कोई पर्वाह न थी। घरमें इस युगल जोड़ीके सिवा कोई नन्हा बालक भी तो न था जिसकी मार्फत कुछ राजीनामा होनेकी आशा भी होती। मगर इस अवस्थामें मियां ही निढाल हो गये। १० ही दिनमें बुद्धि ठिकाने आ गई दिमागसे साराका सारा टोड़ीपन निकल गया। स्वतन्त्रता रूपी डाक्टरके सामने गुलामी रूपी अनादि रोग टिक न सका।

मियांको अन्तमें यही बिचार आया कि क्यों न खद्दरकी ही साड़ी मँगवा दी जाय। जिससे यह कजिया मिट जाय। वक्तपर खाना-पीना, ठंडाई, चटनी, शर्वत आदि सब कुछ मिल जाता है। मगर मधुरालापके बिना ये सब कुछ भी नहीं जँचते। ऐसी स्वतन्त्रता देवीकी अवज्ञा करना पांच हत्याओंसे अधिक पाप है। हाथके कते-बुने वस्त्र हमें क्यों बुरे लगते हैं ? अन्य देशीय वस्तुओंने हमें कितना पतित कर दिया है। आखिर देवीजी यही तो कहती हैं कि हम भारतमें जन्मे हैं तो विलायतमें मरने थोड़े ही जायंगे। जलवायु तो हो भारतका और कफन आवे विलायतसे। कितने मर्मकी बात है। अब तो मैं भी स्वदेशाभिमानी बनूंगा। साड़ी

आते ही देवीजी तुरन्त बोल उठेंगीं। अगले दिन सवेरे ही खद्दर भण्डारसे घरमें कई रंगकी साड़ियां आ गईं, मगर गृह-कोकिला फिर भी चुप थीं। हाय! अब भी वह मनोहर केकी-कूकको इन कानोंको सुननेका सौभाग्य न मिला। वसुदेव हाथ मलते रह गये और विचारने लगे कि शायद अब पूर्ण प्रायश्चित्तके बिना सुलह होना कठिन है।

+ + + +

आज रविवार है, दफ्तर बन्द रहेंगे, क्योंकि छुट्टी है, नलपर जाकर सई सवेरे वह स्नान कर आए हैं और आज घरके द्वारपर होली जल रही है। एक तार भी घरमें न छोड़ा। सब अग्नि देवके उदारार्पण कर दिया। नये सिरेसे सब क्षौम वस्त्र धारण किये। चौकेमें आकर ये नये बहरूपिया साहब बड़े गौरवके साथ विराज गये। देवीजीने स्वामी-जीको दृढ़ मौनमें उत्तमोत्तम भोजन परोस दिये। भोजनसे निवृत होकर स्वामी शयनागारमें चले गये। देवीजीने तिपाईपर झझरी गिलास पहले धरसे ही रक्खा था। कोई काम ऐसा न छोड़ा कि जिसमें किसीको किसीकी शिकायत करनेका अवसर आ सके और खास-कर पत्नीकी तो इसमें बड़ी भारी जिम्मेदारी होती है।

देवीजीने चौकेके सब बर्तन मलकर सदाकी भांति साफ किये। उन्हें अलमारीमें रखकर सफेद वस्त्रसे सबको ढांप दिया, जिससे मक्खी या किसी अन्य जन्तुको स्पर्श करके विष छोड़नेका अवसर न आवे। सन्दूकमेंसे सीने-पिरोनेका सामान लेकर क़ालीनपर सदाकी भांति क़सीदा काढ़ने बैठ गईं।

दिनके तीन बजे होंगे, बाबूजी लालटेन जलाकर हाथमें लटकाये हुए उसी कमरेमें आकर पुस्तकालयकी सब पुस्तकोंको प्रकाशमें इधर-उधर देखने लगे। परन्तु स्वार्थ पूर्ण न हुआ देखकर मेज़के नीचे रद्दीकी टोकरीके कागजोंको रोशनीके पास ला-लाकर उन्हें उथलने-पुथलने लगे। बहुत देरके बाद यह हाल देखकर देवीजी जरा हँसकर बोलीं कि स्वामिन ! किसकी खोज है ? पतिदेव तुरन्त मुसकुरा कर कह उठे कि श्रीमतीजी ! जिसकी ढूंढ़ भाल मुझे थी वह अमूल्य वस्तु मेरे अहोभाग्यसे पुनः मिल गई।

पत्नी—वह तो आपकी सेवामें सदा ही उपस्थित थी। पर आपने उसे चर्बी और कीड़ोंकी आंतोंसे ढांपकर अपवित्र या जड़ बनाकर उसे विलासिताके कुचक्रमें फँसाकर सदाके लिये दुर्गतिके गर्तमें सड़ाकर रखना चाहा था। पर हम अबलाओंके पास उपेक्षाके अतिरिक्त और क्या शस्त्र पुरुषोंने रख छोड़ा है। यदि इस मौनको आप सदाके लिये तुड़वाना चाहते हों तो यह बहुरूपियापन न रखना।

पतिने नतमस्तक होकर कहा कि चाहे नौकरीसे कल ही जबाब क्यों न मिल जाय परन्तु अब स्वदेशी वस्त्र और आर्य वेश भूषा कभी न छोड़ूंगा। देवीने उठकर पतिके पैरोंमें अपना मस्तक टेक दिया कि दूसरे ही क्षण एक ब्रह्म हो गये, और द्वितीयाका उनमें अभाव था।

होटल

दीनाकी विधवा विमाता उसे अपने पुत्रसे भी अधिक मानती है। इसकी एक चिर-रोगिनी पत्नी है, दो-तीन बच्चे हैं। बस यह कुटुम्ब भी छोटासा है। पर सबसे बड़ी बात यह है कि दीनाके सब कहनेमें चलते हैं। कोई इससे बाहर नहीं जा सकता। कुटुम्बके ये सब आदमी मात्र एक आटेकी दूकानसे पलते हैं। इनका भाग्य आटेको मशीनके सहारे चलता है। यह मशीन इसके चाचाकी है। चाचा की दीनापर इतनी ही कृपा-दृष्टि है कि दीनासे सिर्फ पिसाई चार्ज नहीं की जाती। चाचा जैसे महापुरुषोंकी अनाथ दीनापर यह दृष्टि क्या कुछ कम अच्छी है—इतनी उदारता तो इसे डूबतेको तिनके का-सा आश्रय है। आखिर दीना बेचारा गरीब ही तो है। गरीब पर सबको थोड़ा बहुत तरस इसलिए आ जाता है कि इसकी हायसे सब कांप उठते हैं। चाचाजी वैसे तो अलग रहते हैं। यहीं कहीं जैन-मन्दिरवाली गलीमें ही घर है, पर दूकान अच्छे मौकेपर है। ठीक सब्जीमंडीमें है। संध्या तक खासी पिसाई आ जाती है। मैदे

फरोशोंमें इनका नाम पहले लेते हैं। रूप-रंगके तो जैसे हैं वैसे ही हैं, पर भाग्यके सिकंदर हैं। इस समय चाहें तो मिट्टीमें हाथ डालकर सोना ले सकते हैं। पर इस मंजिल तक अभी इन्हें पहुंचनेकी आशा न होती थी। घरमें मियां बीबीके अतिरिक्त और तो कोई है नहीं। तब किसके लिए इतने पापड़ बेले जायँ, यही समझ मन मारके रह जाते थे। इसीसे यह थोड़ीसी ममता दीना पर रख रहे हैं। बाप तो इस बेचारेको बचपनमें ही छोड़कर चल बसे थे।

* * * *

दीनाकी दूकान इसलिए चल निकली है कि जार्जपंचम गद्दी पर बैठने इग्लैंडसे भारत आ रहे हैं। इसीसे जल्सेमें बड़ी चहल पहल है। लोगोंके विचारसे एक करोड़ आदमी एकत्र हुए हैं। कुछ कुछ बात सच भी निकली। बारादरीमें भी उन दिनोंमें वहुत साधु बिराजमान थे। दिल्लीमें पहले ऐसी भीड़ कभी नहीं देखी गई। कन्धे से कन्धा मिलता था। यह दर्बार-क्रिया होनेके बाद उस भूमिके भाग बड़े गये। और उस जगहका नाम किंग्सवे kings way पड़ गया। उस भूमिके साथ देहली मात्रके भाग खुल पड़े थे जौहरियोंकी उन दिनों पांचों अँगुलियां घीमें थीं। बजाजोंने अपना भाग सराहा था। टोपीवालोंने धुँएके मालको असली के दामों बेचा। घीवालोंकी आजीविका क्या कुछ कम सराहनीय थी, रुपयेका घी पांच छटांक तक बेचा था। दूधवालोंका कहना है कि ऐसा जमाना अब देखनेको भी न मिलेगा, हमने पनियाला दूध ॥) सेर अपने हाथों बेचा है। मोदियोंके तो पोबारा थे।

छक्कनलाल मोदी तो इसीमें बन गये थे। दालवाले पूरे मालदार कहला गये। हमारे दीनाके भाग्यका पुराना जंक इसी दर्बारके कृपा कटाक्षसे उतर गया। पैसा खूब कमाया था। पर कम तोलना और नया-पुराना एक करनेका काम इससे न हुआ। इन दो अपराधोंको किसी गुप्त शक्तिने दीनाके पवित्र अन्तस्तलमें स्थान न जमने दिया। अन्तमें इस सत्य धर्मने दीनाका पलड़ा वर कर दिया। आखिर परिश्रम भी तो कोई वस्तु है। धनके साथ बाजारमें साख भी पहलेसे अधिक जम गई। लोग यों ही रुपया इसके घरमें सफ़ीदोंके लड्डुबेरकी तरह फेंक जाते मानो दीना रुपयोंका चौकीदार है। चाचाजीसे अधिक विश्वास अब दीनाका है। पर इसके मनसमुद्रमें इतना कुछ होनेपर भी घमण्डका ज्वारभाटा कभी नहीं आ पाता था। प्रकृतिने दीनाको दीनप्रकृति बख्शी थी। अमीर-कबीरोंका सा खाऊ-उड़ाऊ न था। दीनानाथ इस नये नकोर प्रवाहके तीखे झोंके खाकर भी भोली और सरल प्रकृतिका स्वामी बना हुआ था। इसीसे पेटमें पाप न रखता था और सबको समान भावसे देखनेका अभ्यास इसीसे बना रहा था। सामायिक संवर यथा समय करनेमें कभी न चूकता। मूलचन्द मुसद्दीलालकी धर्मशालामें अकसर कभी-कभी आये गये सच्चे साधुओंके दर्शन करने दोनों वक्त जाता था। मुनियोंको आहारपानीकी दलाली करानेका इसके अतिरिक्त और किसीको शौक न था। जिसपर भाग्य ऐसा लगा कि सब्जीमंडीमें इज्ज़त कमाता और मुनियोंके सम्पर्कमें धर्म कमाता। अब आपही कहिये इससे बढ़कर भी कोई भाग्यशाली हो

सकता है। धन और धर्म कमानेवाला ही आदर्श कमाऊ समझा जाता है। अब तो दीनाके पीछे कुछ मनचले दिल्लीके शौकीन मित्र इस तरह इसे घेरे रहते जैसे गुड़पर मक्खी ! दीना ही था जो पगड़ी रखकर घी खाना जानता था। यह आगन्तुकोंकी सेवाको बादाम-की ठंढक तथा पान-इलायचीसे आगे आधा इञ्च भी नहीं बढ़ने देता था। पक्का बनिया था। समझे हुए था कि विलासिताके खड्डेमें वाजिदअली शाह जैसोंका पता न चला तो यहां २-४ हजार रुपल्लियां किस बागकी मूलियां हैं। इसीसे अपनी सादगीसे कभी बाहर न होता था, और मित्रोंके सब्ज़बाग दिखलाने पर भी यह बंबीमें सांपकी तरह हमेशा सीधा रहता था और याद रखता था कि ये अम्माजीकी अक्षरशः बातें अनुभूत और सत्य सिद्ध हैं। वह गोपीचन्दकी तरह सच्ची मातृ भक्ति करता था। इसीसे मित्रोंका इसपर जोर न चलता था।

* * * *

छुट्टनलाल—क्यों भाई दीनानाथ, आज हड़ताल है। गांधीजी गिरफ्तार हो गये हैं। मगर तुम फिर भी दुकानके फट्टेसे इस तरह चिमटे बैठे हो जैसे छतमें चमगीदड़। आज तो पूर्ण हड़तालकी सम्भावना है। अतः चलकर कहीं जी बहलायें। हमारी इच्छा तो कुतुब चलनेकी है।

दीना—भाई, अब चलो तो निगम्बोध तक तो चल सकता हूं आगे नहीं।

मिट्ठनलाल—निगम्बोधमें क्या है ?

दीना—वहां यमुनाका बहता सौन्दर्य्य देखनेको मिलेगा, और जलते हुए मुर्दोंको देखकर मिलेगी वैराग्यमयी शिक्षा—बस नहा धोकर चले आयेंगे। अधिक फुर्सत नहीं है। क्योंकि महावीर भवनमें दो मारवाड़ी साधु आये हुए हैं। उनका व्याख्यान सुनेंगे, और वे व्याख्यानके बाद ही वहांसे चलकर यहां आ जायेंगे। तब भला फिर उन्हें आहारके लिये मेरे सिवाय घर कौन बतायेगा? यहांके जैनोंमें तो इतना भी राम नहीं है। फिर उनके अंगूठेमें कुछ जख्म पड़ गया है। दो बजे नन्दू जर्राहके यहां ले जाऊंगा। माफ करें. मुझे कुतुब जानेकी फुर्सत नहीं।

मिट्ठनलाल—साधु होजा साधु, अभी तो सिरपर सबके सब काले हैं। अभीसे वैराग्यकी बातें बघारने लग गया। लालाको फुर्सत ही नहीं होती। हम तो हरेभरे दिनोंके उत्साहसे भरपूर होकर आये थे; पर आपने दोस्तीकी कुछ भी क़दर न की। हमारे मन पर इस तरह ढेला पत्थर बरसाने लगे। अच्छा, रातको तो फुर्सत होगी। आज रातको तो हम तुझे जरूर एक नवीन आश्रममें ले जाकर ही मानेंगे।

दीना—दिल्लीके गली मोहल्ले कूचे सब मेरे गाहे पड़े हैं। मुझे दिल्लीमें कुछ भी नवीनता नहीं जँचती। आज अम्मांजीको बुखार आ गया है। शायद ही रातको फुर्सत मिले।

जग्गीमल—यार तुम भी खूब हो। हमेशा घरकी मोरीके कीड़े ही रहते हो। कभी तफरीहके लिये भी चला करो। जिन्दगीका मज़ा लेना कोई हमसे सीख ले।

दीना—भाई ! मुझे तो माताजीकी सेवामें ही आनन्द है। बच्चोंका पालन इस आटेकी दूकानसे हो जाता है और आत्म शांति सन्तोंके दर्शनसे मिल जाती है। मुझे इससे अधिक जिन्दगीका कुछ भी मजा न चाहिये। थोड़ेसे सर्राफीके अक्षरोंको छोड़कर मुझमें इल्मी लियाकत भी नहीं है। मुझे मालूम है, शायद तुम सन्ध्यामें महावीर लाइब्रेरी ले चलोगे। पर मैं पुस्तकें पढ़ना भी नहीं जानता। रहा सिनेमा-थियेटर, मैं इतना बड़ा हो गया, कभी उन्हें देखने गया ही नहीं।

भोंदूमल—आज तुम्हें वहां ले जायेंगे जहां सातों पीढ़ीके पित्रोंकी तृप्ति होती है।

दीना—भाई, हमने तो पितृ तर्पण और श्राद्ध करना सब छोड़ दिया है। अब तो हमारी अम्मांजीको भी इसका वहम तक नहीं है। जीतोंको सताकर मरे हुएके नामपर श्राद्ध करना भी कुछ भल-मनसी है ? भाई मैं जीते जी पित्रालय कभी न जाऊंगा। मेरा पित्रालय है मेरी पूज्या माता, जिनकी भक्ति करना मेरा कर्त्तव्य है।

हांडाराम— अच्छा, सत्संग आश्रममें तो चलोगे ?

दीना—मुझे सन्तोंके समागमके अतिरिक्त और किसीका भी सत्संग पसन्द नहीं। सब सुल्फेबाज मूंछकटे पैसेके यार देखे ! नाम संतोंका सा, लिबास सन्तोंका सा; पर पेलते हैं इमलीके पत्ते-पर डंड। दूर पटको ऐसे सन्तोंको। अगर शान्ति और धर्म-शिक्षाका कोई स्थान हो तो चला चलूंगा। पर आपके और और दुर्व्यसनके अड्डोंपर मैं कभी नहीं फटकानेका ! अगर ऐसी वैसी

जगह हुई तो मैं फिर कभी तुम्हारा विश्वास न करूंगा। कहनेको तो आप मेरे मित्र हैं; पर मैं तो आपको अब उजागरमल भी समझने लगा हूं।

भोंदूमल—अच्छा दीना अब तो पूरे ब्रह्मज्ञानी बन गये हो। हम भी आज ब्रह्मशालामें ही ले जाकर छोड़ेंगे। जहां आपको पूर्ण सहजानन्दकी चसक लग जाय। फिर तो उस आश्रममें हमें आप ही खींचकर ले जाया करो तो करामात नहीं।

* * * *

कांचके समान चमचमाती तारकोलकी सड़क, बिजलीकी अनगिनत दीपावलियोंसे जगमगाती महानगरीको रातमें देखकर परदेशी मुसाफिर अपना आपा खो देते हैं। सब्जीमंडीके छकड़ छैल छबीले युवक मांग पट्टीसे लैस होकर, चूड़ीदार चुस्त पायजामा कसे, जर्कबर्क महीन मलमलकी पोशाक डाटे हाथमें लपलपाता बेंत लिये पान कचरते, सिगरेटका धुआं उड़ाते, इतराते, आपसमें ठट्टा मस्खरी करते, बाजारकी सान्ध्यशोभा निहारते, चावड़ी बाजारके हरे भरे कोठोंपर आखें सेंकते, अपना यौवन धन्य और जीवन सफल करते, तमाम दिल्लीकी परिक्रमा देते हुए विक्टोरिया होटलकी मनोहर अट्टालिकाके ऊंचे भवनमें जा डटे। पर गरीब दीनाकी तो वही खादीकी पोशाक है। सफेद अहमदावादी देशी मिलकी लाल किनारीकी धोती, खद्दरका मोकली बांहोंका कुरता. सिरपर लखनवी पल्ले के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यही इसकी नित्यकी वेश भूषा है। यह आज तक सादगी देवीका उपासक रहा है। फैशन परस्तोंकी

फ़हरिस्तमें अब तक इसने नाम ही नहीं लिखाया है। जवानीका नशा दिल्ली भरमें मानो इसीने रोका है। दुर्व्यसनके प्रवाहमें मानो सम्हल कर तैरकर पार हो रहा है। पर आज इन सिड़ी खिलाड़ियोंके झीले झांसोंमें आकर यह भी एक कुर्सीपर बैठा है। कमरेकी शोभा निहार रहा है। बातकी बातमें छः तश्तरियां लगकर आ गईं। मित्रोंके हाथ अंग्रेजी ढंगके बने खानेपर पड़ने लगे; पर दीना उसी तरह हाथ खींचकर भीतकी मूरतकी तरह बैठा रहा। मित्रगण मीठी हँसी हँसकर बोले कि क्या ऊंघ रहे हो दीना, जलपान क्यों नहीं करते !

दीना—आप खाइयेगा, मैं इस वक्त न खाऊंगा।

भोंदूमल—यार, तुम्हारे बिना हम भी क्या खाते अच्छे लगेंगे।

दीना—क्या इनमें कोई उत्तम खाद्य वस्तु है जिसके लिये मन भटकता हो, ऐसी तो कोई बात नहीं मालूम देती। ये सब चीजें रोज घर खाते पीते हैं। फिर न जाने आप किस चीजपर रीझे पड़े हो ?

भोंदूमल—दीना, संसार भरमें हमारी जातिके लिये यह वस्तु अलभ्य है; घरमें नहीं मिल सकती। तभी तो यहां तक आये हैं।

दीना—मुझे नुसखा बतायें, मैं अपने घरपर बनानेका प्रयत्न करूंगा।

भोंदूमल—भाई, यह स्वर्गीय वस्तु घरपर नहीं बन सकती। सबमें मोलकी महँगी वस्तु है। जरा जबानपर रखियेगा तब ही तो स्वाद परख सकोगे।

दीनानाथ—भाई सच कहता हूं, मुझे बचपनसे ही अम्मांजीने रातमें खानेका त्याग करा दिया था। पानी तक भी रातको नहीं पीता। पर हां सब सामग्री लिखा दो, अम्मांजीसे इसी तरहका खाना अवश्य बनवा दूंगा। मगर मित्रोंमेंसे किसीकी हिम्मत नुस्खा बतानेकी नहीं पड़ती थी। इतनेमें होटलवालेने आकर कहा कि लालाजी! आपकी अम्मांजीकी क्या मजाल है जो इस खानेकी कापी कर सकें! यह चीज खर्गोशके मांसकी बनती है, समझे! बस फिर क्या था कलई खुल गई, आस्मानका थूका मुँहपर आ गिरा। ताम्बेपरसे पारा अलग हो गया। दीना जमीनपर थूककर उठ खड़ा हुआ और गुस्सेसे लाल होकर बोला, मुझे बहकाकर मेरा धर्म बिगाड़ने यहां लाये थे। बदमाशो! अपना तो दिवाला निकाला मुझ गरीबका भी सर्वनाश करनेके लिये तुल गये हो; नीच कुत्तो! आजसे कान पकड़ता हूं कि तुम्हारा नीच संग कभी न करूंगा। आज लाज रह गई। रात्रि भोजनकी प्रतिज्ञा थी। नहीं तो आज मुझसे जैनत्वका नाश हो गया होता। धन्य अम्मांजी! एक मामूलीसी प्रतिज्ञा दिलाकर आज तुमने मुझे भयंकर पाप करनेसे रोका है, धन्य वीर परमात्मन! तेरे ज्ञान, और तेरे बताये हुए साधारण नियम धर्मको बार-बार धन्य!

कुत्तेसे भी बदतर

उमर खय्यामने न जाने किस मद्यका कथन किया था परन्तु शान्तिकुमार उसका आशय वही रोहित वस्तु ही समझ पाया था जिसके रंगमें अग्नि वर्षा होती है, जिसके जलमेंसे ज्वाला-की लपटें निकलती हैं, जिसका प्रकाश पुरुषको मदान्ध कर देता है। वह कहता था कि जब उमर खय्याम जैसे विद्वानने मदिराकी प्रशंसा की है तब मैं नहीं समझता कि टिम्परन्स सोसाइटीके मूर्ख क्यों क्रन्दन किया करते हैं, शायद इन्हें बुद्धिमत्ता मानो छूतक न गई हो। जो मनुष्य मदिरा पीकर सच्चिदानन्दमय जीवनको सुषुप्ति नहीं देख सकता उसको चाहिये कि वह मृत्युगत हो जाय या आत्म-घात कर ले।

क्यों माताजी! महर्षि लोक जो सोमरसका पान किया करते थे क्या वे मूर्ख थे?

तब माता तंग आकर कहती कि पुत्र! तुम विज्ञानवेत्ता हो, मैं तुम्हारे साथ चर्चा नहीं कर सकती, परन्तु स्मरण रहे कि एक दिन

तुम्हें अवश्य रोना होगा। मेरी बातको पल्ले बांध रक्खो, तुम आंसू बहाओगे, शान्ति! और पश्चात्ताप मुफ्तमें करोगे।

शान्तिकुमार कहता मातः! आप एक अच्छी व्याख्यानदायिका हो, कहीं कांग्रेसमें तो आप नहीं प्रविष्ट हो गईं, अच्छा शीघ्रता करो दफ्तर जानेमें देरी हो रही है, आलू बनानेमें तो माताजी आपने बड़ी चमत्कृति दिखा दी है, ये बड़े स्वादु हो रहे है।

* * * *

माता सोचती थी कि कैसा हठी बालक है, सब उनका-सा स्वभाव है; वे जिस बातपर डट जाते थे, टलते ही न थे और वे भी आलूप्रिय थे, उनका भी चर्चा करनेका ही स्वभाव था, वे पक्के हठी थे।

माताका नाम रामाबाई था और वह थी आदर्श विधवा। नखसे शिखातक श्वेत वस्त्र पहनती थी। मानो कोई श्वेतवस्त्रादेवीका अवतार है। वर्षोंके ब्रह्मचर्य रूपी असिधारा व्रतने नेत्रोंमें एक विलक्षण तेज पैदा कर दिया था, मुख-मण्डलपर क्रान्तिकी अमोघ वर्षा थी। वह बनाव-शृङ्गार न करती थी परन्तु बनाव-शृङ्गार करनेवाली कालेजकी कितनी ही बालिकाओंसे अत्यन्त सुन्दर थी। इस अरुण और श्वेत सागरमें आंखोंकी सुन्दर नौकायें तैरती थीं और तटस्थ पान्थजन लोभकी तृष्णा तरंगमें हाथ मलते-मलते लय हो जाते थे।

शान्तिकुमार इसका सर्वस्व मात्र था, वह दफ्तर चला जाता तो यह चरखा काता करती और अध्यात्म पद गाती रहती, और जब वह लौटकर आता तो उसे प्यारसे नई-नई सात्विक वस्तुएं खिलाती,

और जब रात्रिके समय कोई इष्ट-मित्र उसे किसी गलीकी गन्दी नालीसे घसीटता हुआ ले आता तो माताकी आंखोंसे छम-छम अश्रुधारा बरसने लगती, वह सोचती थी कि क्या इसे कभी भी समझ न आयगी।

एक दिन शान्तिकुमार शराबकी मूर्च्छासे मुक्त होकर देखता है कि मस्तकपर पट्टी बंधी है, शय्याके सरहानेकी ओर माता खड़ी है सूरजकी एक नन्हीं-सी किरण उसके चमकीले काले बालोंसे खेल रही है, और माताकी आंखोंसे अश्रुधारा निकल रही है।

शान्तिकुमारने पूछा माता रोती क्यों हो? माताने शीघ्रतासे आंसू पोछकर कहा—रोती कहा हूं।

शान्तिसे सब नागरिक घृणा करते थे, इसका कोई मित्र न था मात्र इनेगिने स्वार्थियोंके इसका कोई अपना न था, ले-देकर बस माता ही इसका सर्वस्व थी। इसकी दौड़-धूप मातातक थी, इसे यह मातृभक्तिसे सच्चा प्यार करता था, कितने ही बार संसारसे तंग आकर वह माताकी गोदमें बैठकर रोने लगता था तथा कई बार इसने मातासे कहा था कि मां यदि तुम्हें कभी किसीने दुखी किया तो मैं उसका सर काट दूंगा। कितनी ही बार उसने अपने साथी क्लर्कोंसे कहा था कि मां! अरे माता जैसी सात्विक और उत्तम संसारमें अन्य क्या है·····आज इसी माताको रोते देखकर शान्तिकुमार उद्विग्न हो उठा, बोला—माता सत्य-सत्य कह दो। रोती क्यों हो?

माताने धीमे स्वरमें कहा रोती हूं! शान्तिकुमार! इसलिये कि तुम शराब पीना नहीं छोड़ते। शान्तिकुमार हँसने लगा—

उसके उपहाससे मकान गूंज उठा, बस इसीलिये, यह तो नितान्त निरर्थक-सी बात है मां! मत रोओ—ऐसे धर्मोंमें मत फँसो, यह कहता हुआ वह उठकर स्नानागारमें चला गया, माता विस्मित होकर पुतलीकी तरह खड़ी ही रह गई।

* * *

नगरमें अब प्रति दिन मनुष्य अपनेको दमन-नीतिकी अग्निमें बलि देने लगे हैं। लघुवयस्क बालक शराबोंकी दुकानोंका पहरा देते हुए पकड़े जाते हैं परन्तु फिर भी न जाने कहांसे नवीन स्वयं-सेवक आ जाते हैं।

शान्तिकुमारने कहा मातः कहां पधारोगी? माताने द्वारमें खड़े-खड़े कहा कि मैं जाऊंगी शराबियोंकी दुकानोंपर। जैसे बने लोगोंको शराब खरीदनेसे मना करूंगी। शान्तिकुमारने रोदन-पूर्वक कम्पित स्वरसे कहा—शराबकी दुकानपर? पता नहीं कितने स्वयंसेवक बन्दी-गृहमें जा चुके हैं। माता बोली तब क्या बात है मैं भी बन्दिनी हो जाऊंगी। वह बालकोंकी भांति हठ बांध मार्ग रोककर खड़ा हो गया। बोला माता मैं तुम्हें न जाने दूंगा।

रामाबाईने कड़ककर कहा कि आगेसे हट जा! मैं तुम्हारी माता हूं तुम मेरे बाप नहीं हो। यों कहकर वह उसे बलात्कार मार्गसे हटाकर बाहर चली गई। शान्तिकुमारने क्रोध-पूर्वक कहा कि जाओ मेरा क्या बिगाड़ सकोगी, शायद तुम सब दुकानोंपर तो पिकेटिंग न लगाओगी। जहांपर तुम न होगी वहीं मैं जाऊंगा।

* * * *

सन्ध्याका समय है। राज-मार्गपर अन्धकार विराजमान है। अभी दीपकोंका प्रकाश नहीं हुआ है। रामाबाई बागमेंसे जा रही है। अन्तस्तल प्रसन्नताके मारे बांसों उछल रहा है। मन ही मन इसे एक आत्म-तेजकी झलक दिखाई दे रही थी, सारा दिन इसने शराबकी दुकानपर पहरा देकर बिताया था, इस दिन एक बार भी शान्तिकुमार इधर नहीं आया, उसके मनमें बड़ा आमोद था कि इसका यह शस्त्र काम कर गया है। आज तो शान्तिने शराब न पी होगी। अन्तमें एक समय ऐसा दृष्टिगत होगा कि जब इस मनोबल और चरित्र संगठनकी विजय होगी, इस प्रकार मैं प्रति दिन यहां आया करूंगी, और तब तक शान्तिको विवश होकर यह दुस्वभाव छोड़ना ही पड़ेगा।

* * * *

इन्हीं विचारोंका आन्दोलन करती हुई वह अपने घर वापिस आ रही थी कि बागमें अन्धकारकी पूर्ण राज्य-सत्ता जम चुकी थी। पक्षीगण वृक्षपर अपने घोसलोंमें शयन करनेको बद्धचेष्ट थे और पश्चिमके आकाशमें एक हलकी-सी लालिमाज्योति शनैः-शनैः अन्तर्धान होती जाती थी और रामाबाई वृक्षोंको पार करती हुई अपने घरको जा रही थी।

* * * *

सामनेसे कोई लड़खड़ाता हुआ आ रहा है, इसकी वाणी शराब-की अधिक मात्रा पी जानेके कारण निकृष्ट हो गई है, वह अश्लील गीत भी गा रहा है। रामाबाई एक ओर सटकर खड़ी हो गई

जिससे पत्रोंमेंसे आती हुई ज्योतिकी अन्तिम किरण छन छन कर इसके मुखमण्डलपर पड़ने लगी।

आगन्तुक पुरुष इसे अनायास देखकर मारे प्रसन्नताके एकदम उछल पड़ा और बोला जा···न···

रामाबाई द्रुत गतिसे आगे बढ़ी। मद्यपने दौड़कर उसे पकड़ लिया और ताण्डव नृत्य करता हुआ बोला कि अब······दूंगा।

रामाबाईने अब इसे अच्छी भांति देखा तो इसके हाथोंके तोते उड़ गये और सताई हुई सिंहनीकी तरह गर्जकर बोली कि ओ शान्ति! परे हट जा, परन्तु शान्तिकुमारने मदिराके अन्ध और पाशविक बलमें ग्रसित होकर उसे और भी दृढ़ता-पूर्वक दबाकर पकड़ लिया और नाचता हुआ बोला कि अब ·····तो······अब तो······अब······प्या······।

रामाबाईने अपने आपको छुड़ानेकी अत्यन्त चेष्टा की परन्तु शान्तिमें पाशविक बल आ जानेके कारण रामाबाईको जमीनपर गिरा दिया, रामा भयभीत होकर बोली शान्ति! शान्ति! मैं तुम्हारी माता हूं छोड़ दो।

परन्तु शान्ति इस संस्मृतिमें नहीं था कि जहां कोई किसीकी वाणीकी पुकार सुनता है। इसने तो रामाबाईके कपड़े तक फाड़ दिये। यदि लोक उसकी घोर पुकारपर न आकर छुड़ाते तो······।

* * * *

अब सूर्यनारायण उदयाचलकी क्रीड़ा करते-करते उदय हो रहे हैं। इनकी किरणें गवाक्षोंमेंसे मानो झांक-झांककर देख रही हैं।

शान्तिकुमारकी मूर्च्छा टूटी और देखा तो सिरहाने जिनमोहन डाक्टर बैठे हैं। मस्तकपर बरफ फेर रहे हैं, इनके पास ही कम्पाउण्डर उनसे खड़ा-खड़ा बातें कर रहा है ··इन्हें देखकर शांतिकुमारने आंखें मींच लीं और सोचता है कि मैं कहां हूं। कुछ स्मरण नहीं होता······ घरसे जाकर खूब मदिरा पी थी, फिर मैं बागकी ओर गया था··· स्मृति नहीं······हां फिर मानो किसीसे लड़ाई हुई थी, या तांगेके नीचे आ गया था ·····शायद······इसी अवस्थामें डाक्टर अपने कम्पाउण्डरसे कह रहे थे कि······यथार्थ है पशुमें और शराबीमें अन्तर ही क्या होता है? यदि कल मनुष्य बाईजीकी पुकार सुनकर वहां न पहुंचते तो यह नराधम रामाको न जाने मार ही डालता। शान्तिकुमार चौंक पड़ा, परन्तु आँखें मींचकर पड़ा ही रहा······कम्पाउण्डरने कहा कि 'डाक्टर महोदय! क्या इसे यह ज्ञान न था कि यह हमारी माता है।" वे बोले कि अधिक नशा पीनेसे मस्तिष्क शक्ति इतनी नष्ट प्रायः हो जाती है कि शून्यता छा जानेके कारण आँखें देखकर भी नहीं देखतीं, कान सुनकर भी नहीं सुनते।

शांतिको इस समय कम्पकम्पी आ रही थी, डाक्टरने समझा कि यह वेसुध है, लरजा आ रहा है, परन्तु वह सुधमें था, चेतमें था, सब कुछ सुना था, सब कुछ समझा था। चिकित्सक अपने सहचरसे कहता है कि जो आदमी मातापर भी हाथ उठा सकता है तथा मातापर भी अत्याचार करनेपर उतारू हो जाता है, क्यों कम्पाउण्डर साहब! कुत्तेमें और उसमें क्या अन्तर है? कम्पाउण्डर बोला—

डाक्टर साहब, धीमे स्वरमें कहते हैं कि वह कुत्तेसे भी बुरा है। कुत्तेको अकल नहीं होती परन्तु मनुष्य तो बुद्धिका सागर होता है। कुत्ता यदि ऐसा करे तो वह तो अन्तमें मात्र कुत्ता ही है। परन्तु मनुष्य यदि ऐसा करे तो वह कुत्ता नहीं किन्तु कुत्तेसे भी बदतर है। शान्तिकुमारके शरीरसे प्रस्वेद बह रहा था। उसका मुख-मण्डल रक्त वर्ण हो उठा। एक बार डाक्टरको प्रतीत हुआ कि इसके दांत कटकटा रहे हैं और पुनः मूर्च्छित हो गया है, कम्पाउण्डरने कहा—कि चलिये न पट्टी तो समाप्त हो चली है, इसकी अभी सुषुप्ति ही नहीं टूटी।

डाक्टरने कहा हां चलो जरा साथवाले प्रासादमें रामाबाईको फिर देख आवें। इस समय तुमने औषधि तो पिला दी है न ?

कम्पाउण्डरने कहा हां!...और वह दोनों बाहिर जाने लगे। उस समय शान्तिकुमारने कहा "कुत्तेसे भी बदतर ...

वे दोनों खड़े हो गये— शान्तिकुमार बड़बड़ा रहा है, कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी बदतर—डाक्टरने कहा शांतिकुमार ? परन्तु वह अचैतन्य हो कुछका कुछ बक रहा था—मां—मां बालक अवस्थामें तेरा दूध पिया था। शीतल रात्रियोंमें प्रेम पूर्वक शयन कराया था—तूने मोहकताके आंसू बहाये थे, मैंने तुम्हें इसका बदला दिया है, कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी बद-तर—डाक्टरने कहा शांतिः...

शांतिकुमारने कहा तुम रोती थी—तुम चिल्लाती थी—तुम कहती थीं कि मैं तुम्हारी मां हूं—मां हूं और मैं ? कुत्तेसे भी—

कुत्ते—से भी—एकाएक डाक्टरने कहा! अरे इसका तो दिल बैठता जा रहा है—बरांडी लाओ!

कम्पाउण्डरने शीघ्रतापूर्वक बोतल निकालकर शांतिके मुखके निकट लगा दी—इसकी गंधसे शान्तिकुमार जग पड़ा। डाक्टरने कहा शांति, इसे पी जाओ। शान्तिकुमारने कहा "नहीं, मैं शराब न पीऊंगा"

"शांतिकुमार! यह दवाई है" शांतिकुमारने कड़क होकर कहा कि "मैं न पीऊंगा" डाक्टर, आजसे शराब न पीऊंगा—दवाई भी मैं न पीऊंगा। समझे चले जाओ यहांसे" यों कह कर वह पुनः अचेत हो गया!

वास्तवमें शान्तिकुमारने उस दिनसे शराब नहीं ही पी। एकदम शराब त्याग देनेसे दूसरे ही दिन इसके शरीरमें निर्बलताके कारण लरजा आने लगा, अंग प्रत्यंगमें कष्ट होने लगा, पहिले वह उठा था परन्तु अशक्त होनेसे गिर पड़ा और वह फिर चारपाई सेवन ही करता रहा।

डाक्टरने कहा शान्तिकुमार! तुम्हें थोड़ीसी मदिरा पानीमें मिलाकर अवश्य पीनी पड़ेगी। उसने कहा—डाक्टर, मैं कितनी बार कह चुका हूं? मैं न पीऊंगा। मर जाऊंगा पर शराब न पीऊंगा। मैंने शराब छोड़ दी है "भाई? यह ढंग छोड़नेका नहीं है थोड़ी-थोड़ी छोड़ी जा सकेगी" शान्तिने आवेशमें कहा--सकेगी से कुछ प्रयोजन नहीं है। मैंने त्याग दी है बस? जाओ!

डाक्टर निराश होकर चले गये। रामा बाई घायल थी—

शयनागारसे उठकर आई—मांको देखते ही शान्तिकुमारने आंखे नीची कर ली।

रामा—थोड़ी-सी शराब पी लेनेमें कुछ हानि नहीं है। शान्तिकुमार बोला, नहीं रामा—तुम बड़े वीर विक्रान्त योद्धा हो बेटा? मैं समझती हूं कि तुम अपने बिचारके बड़े पक्के हो, और उतीर्ण हो जाओगे। परन्तु स्वास्थ्य रक्षाके लिये ही थोड़ी सी पी लो—शान्ति मौन हो रहा। रामा बाई—इधर देखो शान्तिने मस्तक उठाया, अश्रुपात हो रहे थे। रामा रोने लगी और भर्राई हुई आवाजमें कहा—स्वीकार है—शांतिने मस्तक हिलाकर नाहीं कर दी।

* * * *

कई दिन व्यतीत हो गये—प्रति दिन वह निर्बल होता जाता है—अचैन्यता कई घंटे नहीं टूटती—और मूर्छितावस्थामें वह कितने ही बार बड़बड़ाने लगता—कि कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी बदतर मैं तुम्हारी मां हूं—शांति! मैं तुम्हारी मां हूं—कुत्ते से······

रामा बाई अब शांतिके पास ही बैठी रहती है।

एक दिन उषःकालमें शांतिने कहा कि मैं स्नान करूंगा, और वह इस प्रकार उठ कर चलने लगा मानों उसे कभी रोग ही नहीं हुआ। स्नान करनेके पश्चात् बोला कि, माता मुझे आज नवीन वस्त्र पहना दो—माताने नये कपड़े निकाल दिये। शांतिकुमार उन्हें पहन कर बोला—मां आज भूमिपर एक चटाई बिछाकर नया बिस्तर लगा दो।

मताने कहा यह क्यों, वह बोला जी चाहता है कि आज भूतलपर सोऊं। चटाईपर एक श्वेत वस्त्र बिछा दिया और उसपर शांतिकुमार सोकर बोला कि माता जिस ओर मेरा मस्तक है उस ओर आकर खड़ी हो जाओ, माताके उस ओर खड़ी होनेपर उसने फिर यह प्रार्थना की कि यह सरहाना हटा दो। माताने सरहाना अलग कर दिया।

माता! अपने चरण आगे कर दो—तो मैं उनपर अपना मस्तक रख लूं। माताने ऐसा ही किया तब चरण जुगलमें मस्तक रखकर फिर शांतिकुमारने निवेदन किया माताजी एक वस्तु मांग लूं दोगी!—क्या मांगते हो बेटा, प्रथम वचन दो कि दूंगी—कुछ कहेगा भी बेटा······

शांतिकुमार—माता यह कहो कि मैंने अपने बदमाश बेटेको माफ कर दिया जो कुत्तेसे भी बदतर था।

रामाबाईकी आंखोंमें आंसू भर आये और बोली पुत्र! इसमें तुम्हारा क्या अपराध था?

माता! अपने प्रणसे क्यों फिर रही हो—तुमने कहा था कि जो मांगेगा वही मिलेगा—माताने बहुत अच्छा। बेटा क्षमा किया।

शांतिकुमार—नहीं माता इस प्रकार कहो कि मैंने अपने बदमाश बेटेको क्षमा कर दिया कि जो कुत्तेसे बदतर था—यह सब कुछ कहो। रोते हुए माताने कहा कि यह मैं नहीं कहूंगी कि तुम बदमाश हो।

अपने अश्रुधारासे माताके चरण धोकर कहने लगा कि माता आपको कहना होगा और यही कहना होगा। रोदन पूर्वक माता

कह रही है कि "मैंने अपने बदमाश बेटेको माफ किया जो कुत्तेसे भी बदतर था।"

शांतिकुमारने मंदस्वरमें कहा—माता बड़े सौभाग्यकी बात है कि जो आपने क्षमा कर दिया—अच्छा अब प्रणाम हो! इस प्रकार कह कर वह रामाके चरण कमलोंमें ऐसा सोया कि जैसा समस्त संसार सोता आया है कि जो फिर निद्रा भंग नहीं होती।

—सुमित्त भिक्खु



भिक्षुसिंह और राजसिंह

मगध देशका राजा श्रेणिक बड़ा प्रतापी और ऐश्वर्यवान् था। राजाओंके पास जितने सामान होते हैं उसके पास भी सभी भरे हुए थे। मानो वह पृथ्वी परका दूसरा इन्द्र था। वह बड़ा विद्यानुरागी और विद्वान भी था। उसकी प्रजा बड़ी सुखिया थी। श्रेणिक किसी प्रकारका किसीको भी दुःख नहीं देता था, किसीका भी अधिकार नहीं छीनता था। प्रजापर कर तो इतना थोड़ा लगा रखा था कि देनेमें किसीको कुछ भी भार नहीं होता था। प्रजाको प्रसन्न रखना उसने अपना कर्तव्य समझ लिया था, यद्यपि राजपाट करता था परन्तु उसका हृदय बड़ा ही सरल और साफ था। वह मद्यपान करके सफेद चमड़ेपर मरता नहीं था, न किसी भांतिकी हिंसा ही करता था। एक दिन वही राजा अपने मनको बहलानेके लिये रथपर चढ़कर मण्डित कुक्षि नामके उद्यानमें जा निकला।

नन्दन वनके समान उस उद्यानकी परम मनोहर शोभाको

देखकर उसका मन मोहित हो गया। विविध प्रकारके हरेभरे वृक्ष वहांपर खड़े थे। उनपर अनेक भांतिकी लतायें लटक रही थी।

रंग-विरंगे फूल फूले हुए थे, सैकड़ों ढंगके फल लगे हुए थे, कहीं मोर नाच रहे थे, कहीं तोते बोल रहे थे कहीं भीलों और सरोवरों-पर हंस क्रीड़ा कर रहे थे, मछलियां उछल रही थीं जलकुक्कुट विहार कर रहे थे, पनडुब्बियां डुबकी लगा रही थीं, बगुले कपटी मुनियोंकी भांति एक पांवसे खड़े होकर ध्यान लगाये हुए थे, किनारोंपर तितलियां उड़ रही थीं।

कहीं हाथियोंका भुण्ड घूम रहा था, कहीं सिंह गर्ज रहे थे, कहीं नील गायें चर रही थीं, कहीं हिरण भी फुदक रहे थे, कहीं सांप आकाशमें फण उठाये आंख मूंदे हुए हवा पी रहे थे, परन्तु सभी शान्त निश्चल थे, किसीमें भी क्रोध या भय एवं वैर विरोधका लेश न था।

यद्यपि घाम कड़ा न था, तो भी महीना चैतका था, सूर्यका तेज कुछ-कुछ बढ़ चला था, इसीलिये वह राजा वनकी छवि देखता हुआ एक घनी छायावाले बटवृक्षके नीचे जाकर खड़ा हो गया।

उस वृक्षके परोपकारपर वह राजा अपनेको न्यौछावर करने लगा, कहीं उसकी डालियोंपर बन्दर सो रहे थे, कहीं उसके कोटरोंमें अगणित जीव निवास कर रहे थे, कहीं उसके टूसोंको भौंरे चूस रहे थे।

थोड़ी देरके बाद अचानक उस राजाने देखा कि उस वृक्षके

पास ही सुख भोग करनेके योग्य अति सुकुमार एक साधु भी बैठा हुआ है। उस मुनिको देखने ही से यह बात झलकती थी कि वह पण्डित और जितेन्द्रिय है।

महात्माके अलौकिक रूपको देखकर वह राजा बड़े अचम्भेमें पड़ गया, किन्तु बड़े प्रेम और भक्ति-भावके साथ उस मुनिको राजाने प्रणाम किया, फिर उसकी प्रदक्षिणा करके अति नम्रतासे हाथोंको जोड़कर थोड़ी दूरपर बैठ गया, और बोला, हे मुने! आपने इस तरुण अवस्थामें ही क्यों सन्यास धारण किया? आपका यह समय तो भोग-विलास करनेका है, विरक्त कैसे हुए? आप क्यों अचानक बड़े श्रमसे मिलने योग्य श्रमण पदवीको प्राप्त हुए। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है इस कारण कृपा कर इस अपने भेदको मुझे सुनाइये।

मुनिने कहा हे राजन! यदि आपको कुछ कुतूहल है तो सुनिये, मैं अनाथ हूं, संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है और न अपना संगी-साथी कोई दिखलाई पड़ता है जो मेरे ऊपर कृपाकर कुछ सहायता करे, मुझे ढाढ़स दे।

मुनिके वचनको सुनकर मगधाधिपति राजा श्रेणिक हँस पड़ा, और सिर झुकाकर बोला, हे मुने! आप स्वयं ऋद्धि-सिद्धियोंके नाथ हैं आप अनाथ कैसे हैं? तो भी यदि आप अपनेको अनाथ समझते हैं तो मैं आपका नाथ बन सकता हूं. मेरी सहायतासे संसारमें जितने सुख मनुष्यके लिये आवश्यक हैं सब आपको सुलभ हो जायँगे, मित्रोंकी भरमार हो जायगी, किसी बातकी कमी न रहेगी। आप

चैनके साथ इस मनुष्य जन्मका सुख लीजिये। क्यों इस भोगके समयमें योगकी साधना कर रहे हैं ?

इस तरह अज्ञान और अहंकारसे भरे हुए राजाके वचनको सुनकर मुनिने कहा, राजन! आप क्या कहते हैं ? आप तो अपनी आत्माके भी नाथ नहीं हैं, जो मनुष्य अपने ऊपर भी अपना अधिकार नहीं रख सकता वह दूसरेपर क्या अधिकार करेगा ? इसलिये त्रिकालमें भी आप मेरे नाथ नहीं हो सकते। क्या अन्धा भी दूसरेको रास्ता बता सकता है ? इसी भांति उस साधुकी बातको सुनकर वह राजा बड़े अचम्भेमें पड़ गया क्योंकि पहले कभी भी वैसी बात किसीने न कही थी। इसलिये उसका माथा चक्कर खाने लगा, घबड़ा कर वह बड़ी फुर्तीसे बोला।

महात्मन! ऐसी बात क्यों कहते हैं, मेरे पास अत्यधिक हाथी-घोड़े हैं, नौकर-चाकर हैं; खजाना है, रानिया हैं, ग्राम नगर हैं जितने भोग मनुष्योंके भोगनेके हैं मैं उन्हें भोग रहा हूं, मेरी आज्ञाको सभी मानते हैं। मैं नरेन्द्र हूं, सभी प्रकारके सुख-सामान मेरे पास हैं, हे मुनि! जिसके पास इतने धन-धान्य हों जो सब प्रकारके सुखका उपभोग कर रहा हो वह अनाथ कैसे हो सकता है ? आप महात्मा होकर भी ऐसी बेढंगी बात क्यों कहते हैं ?

मुनिने कहा—हे राजन! आप अनाथ शब्दके सच्चे अर्थको नहीं जानते मनुष्य किस तरह अनाथ या सनाथ होता है उसे मन लगाकर सुनिये. हे भूप! कौशांबी नामकी नगरीमें मेरे पूज्य पिता रहते थे, वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीको भी लजा रही थी। मेरे

पिताके पास धन और रत्नोंकी कमी नहीं थी। मेरे घरवाले मुझे बड़ा प्यार करते थे, मेरा बालकपन बहुत सुखसे बीता जा रहा था, जब मैं किशोर अवस्थाको प्राप्त हुआ तो एक दिन अचानक मेरी आंखें बड़े वेगसे दुखने लगीं, सब शरीर जलने लगा, रोम रोममें कांटेसे चुभने लगे, मैं बेचैन होकर रोने कराहने लगा, जैसे शत्रुके चोखे चोखे तीरोंके लगनेसे देहमें क्लेश होता है उसी भांति मुझे भी पीड़ा होने लगी। मैं विना पानीके मछलीकी तरह छटपटाने लगा। मेरी कमर टूटी पड़ती थी, सिर टूक-टूक-सा होकर मानो उड़ा जाता था। मनोरथ भंग हो गया, मानो मेरे ऊपर वज्र आ गिरा।

हे राजन्! मेरे पिता मुझे प्राणके सम समझते थे, फिर देर क्यों लगती? मेरे पिताजीकी आज्ञासे प्राण और धनको लूटनेवाले बड़े-बड़े वैद्य, मन्त्र तन्त्रके जानेवाले बड़े-बड़े पूजक, झाड़ फूंक करनेवाले नामी नामी सयाने, और चीर फाड़ करनेवाले जर्राह भी बातकी बातमें मेरे पास आ धमके, और मुझे रोगसे छुड़ानेके लिये वे सबके सब मिलकर अनेक प्रकारसे दवा दारू करने लगे, विविध उपाय होने लगे, परन्तु मुझे कुछ भी लाभ न हुआ, तनिक भी रोग न घटा, यही मेरी अनाथता है।

राजन! मेरी माता और मेरे पिता दोनोंने ही मेरे दुःखसे दुखी होकर मेरे लिये भूमि रत्न धन धान्य लुटाना आरम्भ कर दिया और विधि पूर्वक सत्पात्रोंको दान भी देने लगे, मेरे सगे भाई जो छोटे बड़े थे सभी सिसक-सिसक कर रोने लगे, बहिनें भी उदास और निराश होकर रोने पीटने लगीं पर मेरा दुख कुछ भी

न घटा अर्थात् मेरे दुखका बांटनेवाला कोई भी न दिखलाई पड़ा, इस लिये मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

मेरे संगी साथी दास दासियां सभी रोने कलपनेके सि भी काम न आये। राजन्! मेरी स्त्री भी सदा मुझसे प्रेम किया करती थी, और पतिव्रता भी थी, लेकिन वह मेरी कुछ भी सहायता न कर सकी. उसने केवल नहाना धोना खाना पीना शृंगार करना और सोना भी छोड़ दिया, अर्थात् सब सुखोंसे विमुख हो गई. हां इतना उस बालाने अवश्य किया कि मुझे छोड़कर पलभर भी कहीं न गई, और स्नेह भरे अपने नेत्रके जलसे मेरी छाती सींचती रही, उसका कमलसा मुख सूख गया, किन्तु उससे क्या हुआ कुछ भी नहीं, मेरा दुख ज्योंका त्यों बना रहा इस कारण मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

हे भूप! तब मैंने सोच विचार करके अपने मनमें कहा कि इस असार संसारमें बारम्बार दुख ही दुखका अनुभव करना पड़ेगा, सुखका लेश मात्र भी न होगा इसलिये यदि इस कठोर दुखसे सदाके लिये छूटना चाहूं तो अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके शान्त रूप होकर मनके संकल्प विकल्पको छोड़ दूं तथा घरसे अलग होकर सन्यासको ले लूं, जिससे कि संसारमें रहते हुए भी सदाके लिये सब दुखोंसे छूट जाऊँ।

हे नराधिप! इसी भांति सोचते विचारते मुझे नींद आ गई, मानो धर्मने सहायता की और रातके बीतते-बीतते मेरी पीड़ा आप ही आप दूर हो गई, जब सबेरे उठा तो मैंने अपनेको नीरोग पाया

और अपने भाई-बन्दोंसे पूछकर झटपट सन्यास ग्रहण कर लिया, हे राजन्! तबसे अपने और परायेका मैं स्वामी हो गया, समस्त स्थावर जंगमोंका राजाओं प्रजाओंका नाथ बन गया, इस एकान्त बासके सामने अमरावती भी फीकी पड़ जाती है।

हे राजन्! आप अब भी कुछ समझे या नहीं? अपनी आत्मा ही नरकके निकट बहनेवाली वैतरणी नदी है, आत्मा ही पहाड़की चोटीके समान सेमर या शाल्मली वृक्ष है, वही कामधेनु है और वही स्वर्गका नन्दन वन है। राजन्! यदि अपनी आत्मा दुराचारिणी हुई तो शत्रु रूप होकर दुख देनेवाली और सुखका नाश करनेवाली हो जाती है, और यदि वह अच्छी हुई तो सुखको देनेवाली दुखका नाश करनेवाली हो जाती है, अर्थात् दुख सुखका मूल अपनी आत्मा है दूसरेको दोष देना व्यर्थ है, इसीलिये मैंने सन्यास ग्रहण करके अपनी आत्माको अच्छे पथपर स्थित कर दिया है क्योंकि शुद्ध स्वभावयुक्त आत्मा चिन्तामणि कल्पतरुसे भी बढ़कर मनोरथको पूर्ण करनेवाली है।

राजाके मुखके भावको देखकर मुनिने समझ लिया कि अभी राजाका ज्ञान नेत्र नहीं खुला और न उपदेशसे उसे तृप्ति हुई है इसीलिये महात्माने उससे फिर कहा—

हे नृप! जिस एक प्रकारकी अनाथताके नाश होनेसे मैं नाथ हुआ हूं उसे आप सुन चुके। अब मैं अपनी तथा औरोंकी दूसरी अनाथताको कहता हूं स्थिर मन होकर उसको भी सुनिये, क्योंकि वह भी नष्ट हो चुकी है तभी तो मैं स्वयं अपना स्वामी हुआ हूं।

राजन्! वह अनाथता यह है कि अच्छे आचारको प्राप्त करके भी बहुतेरे कायर नर बड़े-बड़े दुःखको पाते हैं।

हे भूप! जो मनुष्य सन्यास लेकर भी भूलमें पड़कर महाव्रतोंका भलीभांति सेवन नहीं करता अपनी आत्माको वशमें न करके विषयमें फँसा हुआ है, वह संसारके बन्धनको जड़से नहीं काट सकता अर्थात् उसके राग-द्वेष, मद-मोह, मत्सर आदिक कभी नष्ट नहीं होते।

हे भूप! जिस मनुष्यमें कुछ भी सावधानी नहीं है जिसका लेना-देना निन्दासे युक्त है वह मुनि उस मुक्तिके पथपर नहीं जा सकता जिसपर कि पहले वीर लोग जा चुके हैं। हे राजन! जो मनुष्य अच्छे-अच्छे अनुष्ठानोंको छोड़कर बहुत कालसे मुंड़िया बना हुआ है और सच्चे तप नियमोंसे भ्रष्ट हो रहा है और उसके व्रत भी नियमित नहीं हैं वह मुनि बालोंका लूञ्चनक्रियाओंसे अपनी आत्माको बहुत दुःख देकर भी संसार-सागरसे पार नहीं जा सकता।

हे राजन! जैसे धानकी खीलोंको और जादूसे बने हुए रुपयेको मुट्ठीमें रखना व्यर्थ होता है, अर्थात मुट्ठी खुलते ही खीलें बिखर जाती हैं और रुपया उड़ जाता है उसी प्रकार धन जोड़नेवाला मुनि धार्मिक जनोंकी दृष्टिसे गिर जाता है संसारमें वह अजाके गलस्तनके समान या कुत्तेकी पूंछके तुल्य व्यर्थ समझा जाता है अथवा जैसे प्रकाशमान वैडूर्य्य मणिके सामने काचका दाम नहीं लगता उसी भांति बुद्धिमान मनुष्योंमें बनावटी मुनिकी दाल नहीं गलती अर्थात्

जैसे जंगली लोग काचको उत्तम पदार्थ समझ कर आभूषण बनाते हैं और नागरिक मनुष्य उसे तुच्छ वस्तु समझ कर फेंक देते हैं उसी भांति बेसमझ मनुष्य भले ही कपटी साधुके फेरमें पड़ जावें लेकिन जो ज्ञानवान विवेकी हैं वे कभी भी धन जोड़नेवाले मुनिका सत्कार नहीं करते।

हे भूप! जो धूर्त मुनि संसारको ठग कर पेट भरनेके लिये या बिषय-भोग करनेके लिये सिर मुड़वा कर या बालोंको बढ़ा भस्म रमाकर साधुओंके चिह्नोंको बनाता है और मर्यादा हीन होकर अर्थात् पतित होकर भी अपनेको मर्यादा पुरुषोत्तम कहता है उसका कभी स्वप्नमें भी निस्तार नहीं हो सकता, उसको चिरकाल तक नरकके कठिन कष्टोंको रो-रोकर भोगना पड़ता है।

हे राजन्! जसे हलाहल विषका पीनेवाला नहीं जी सकता, जैसे अनाड़ी आदमी बंबगोले, बंदूक आदिको चलाकर स्वयं कालके गालमें चले जाते हैं इसी भांति धर्मकी ओटमें जो कपटी मुनि विषयके रसको चखनेके लिये चलता है उसे आत्म-घाती समझना चाहिये क्योंकि जो इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें लगा रहता है वह उन्हींके हाथोंका शिकार बन जाता है और जिसके सिरपर विपयरूपी भूत चढ़ जाता है वह कभी नहीं बच सकता, उसकी इस लोकमें निन्दा और पर-लोकमें बड़ी दुर्गति होती है।

हे राजन्! मुनि वेषधारी जो ठग हाथकी रेखाओंके फल बताकर स्वप्नके गुण-दोप बताकर और मंगल, शनैश्चर आदि ग्रहोंके फल सुना कर तथा झाड़-फूंक करके किसीको धन किसीको पुत्र देनेकी

प्रतिज्ञा करता है या तन्त्र-मन्त्र दिखलाता हुआ सिद्ध बनकर सीधे मनुष्योंसे अपनी मुट्ठी गरम करता है, उस नीचको अपने कुकर्मोंका फल भोगते समय कहीं भी शरण नहीं मिलता, वह अन्धतम घोर नरकमें भी धक्के खाता फिरता है।

हे राजन्! अत्यन्त झूठाईके कारण महा अज्ञानके वश हो वह द्रव्य मुनि शीलसे रहित हो सदा दुःखी रहता है और उलटे फलको पाता है अर्थात सुगतिके बदले उसको दुर्गति मिलती है और वह असाधु दम्भके मारे मौन होकर मिथ्या आचारको दिखलाता हुआ घोर नरकमें जाकर गिरता है अर्थात् सूकरादिक महापतित पशुओं-की योनिमें जन्म पाता है।

हे भूप! जो नीच प्रकृतिका मनुष्य मनुष्योंके न खाने योग्य अयोग्यतासे उपजे हुए अपवित्र वस्तुओंको भी मांग-मांगकर खाता है, पेटके वश हो हिंसासे तैयार हुए मांसादिक भी नहीं छोड़ता सब गटक जाता है। जैसे आग अच्छे-बुरे सब तरहके पदार्थोंको जलाकर राख कर देती है उस तरह वह अविचारी साधु भी सब प्रकारकी वस्तुओंको खाकर मल-मूत्र कर देता है लेकिन सर्वभक्षी होनेका परिणाम बहुत ही भयंकर और बुरा होता है अर्थात् जब वह मुनि इस संसारको छोड़ता है तो उसे यमके अतिरिक्त और कोई भी उससे बात नहीं करता।

हे भूप! जिसने अपनी आत्माको निकम्मा बना रखा है अर्थात् उसको विषय रस पीनेका चसका लगा दिया है तो उस पापी मुनिके गलेको काटनेके लिये किसी शत्रुकी आवश्यकता नहीं है।

वह स्वयं अपने गलेको काट रहा है, जब उसका मरण समय आवेगा तो उसके जितने कुकर्म हैं सबके सब एक-एक करके उसके नेत्रके सामने आकर खड़े हो जायंगे तब उसको अपनी भूलोंका ज्ञान होगा, लेकिन लाभ उधर भी न होगा केवल अपनी मूर्खतापर पछता-पछता कर रोना भर हाथ लगेगा, इसलिये पहले ही सजग हो जाना चाहिये।

हे राजन्! उस दुष्ट मुनिकी अन्तकालमें भी श्रमणकी रुचि व्यर्थ ही है जिसने अपने सम्पूर्ण जीवनमें आत्माको दुरात्मा बना रखा है क्योंकि वह दुष्टात्मा होनेपर भी अपनेको ज्ञानी और महात्मा समझता है अर्थात् यदि वह मोहको छोड़कर अपनेको दुष्ट समझता हुआ निन्दित मानता हुआ मरण समयमें आराधन करता तो उसे कुछ फल भी हो जाता, लेकिन वैसा करनेसे न उसे इस लोकका सुख मिला न परलोक ही का, जैसे धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका वैसे ही वह कपटी मुनि भी दोनों लोकोंसे हाथ धो बैठता है, वह दूसरोंको स्वर्ग-सुख भोगते देखकर मन ही मन झींखता है और अपनेको धिक्कारता है।

हे भूप! इस प्रकार वह विषयी मुनि महाव्रतोंको लात मार करके मनमाना बनावटी आचार करता हुआ संसारमें अपनी बुराई सुनता हुआ उत्तम जिनों (वीतरागों) के सुन्दर धर्म-पथका विरोध करता है, परन्तु स्मरण रहे कि ऐसे कुकर्मका फल भी बड़ा कड़ुआ मिलता है अर्थात् उसे अन्तमें विषय-रसके कीचड़में सनकर विना प्रयोजन शोक करना पड़ता है, सिर धुन-धुनकर पछताना

होता है, चीलकी भांति करुण स्वरोंसे रो-रोकर विलाप करना पड़ता है।

हे बुद्धिमान राजन्! इन मेरी उत्तमोत्तम बातों और शिक्षाओं-को सुनकर अब आप कुशीलों और अधर्मोंके पथको छोड़ देंगे। मुझे ऐसा ही विश्वास है अर्थात् जितने बुरे कर्म हैं, झूठे आचार व्यवहार हैं, मिथ्या दंभ हैं उनसे अलग हो जायंगे क्योंकि मेरे उपदेश कोरे ढकोसले नहीं, न उनमें कुछ लाग लपेटकी बातें हैं, वे बड़े गूढ़ ज्ञानोंसे गुणोंसे भरे हुए हैं अतः आप ज्ञानियों और सिद्ध तथा जिन महात्माओंके अच्छे पथसे चलेंगे?

हे राजन! अच्छे चाल चलन और ज्ञानसे युक्त होकर महा निर्ग्रंथके पथपर रहनेसे और जैसा कि पहले मैंने आचरण रूप सबसे बढ़कर संयमको बतलाया है उसका पालन करके और अपने सब प्रकारके कर्मोंका क्षय करके संकल्प विकल्प हीन होकर त्रिविध दुःखोंसे बचता हुआ मनुष्य उस अति विशाल और सर्वोत्तम मुक्ति स्थानको प्राप्त होता है जहां कि जिनोत्तम वीर लोग जा चुके हैं।

बड़े तेजस्वी जितेन्द्रिय महा तपोधन दृढ़ प्रतिज्ञ और बड़े ही यशवाले उन महा मुनि अनाथजीके मुखसे महा निर्ग्रन्थीय महा-श्रुतकी बड़ाई इस प्रकार विस्तारके साथ सुनकर राजा श्रेणिक बड़ा ही प्रसन्न हुआ और दोनों हाथोंको जोड़कर बड़ी नम्रतासे बोला।

हे महात्मन्! जो कुछ मुझसे आपने कहा है वह बहुत ठीक

और सच है। निःसन्देह मेरे ऊपर आपकी बड़ी भारी कृपा हुई है। मेरी और संसारकी भलाईके लिये ही आपने अच्छे-अच्छे उपदेश दिये हैं जिनके बदलेमें मैं कुछ भी आप जैसे प्रभुवरकी सेवा नहीं कर सकता। यद्यपि महात्मा लोगोंका यह काम ही है कि अपने उपदेशोंका सदावर्त हरघड़ी चलाते रहें तथापि मैं आपसे कभी स्वप्नमें भी उऋण नहीं हो सकता।

हे महामुने! आपकी माता और पिता दोनों ही धन्य हैं वह कौशाम्बी नगरी धन्य है, जहां कि आप ऐसे योगिराज उत्पन्न हुए। प्रभो! आपका मनुष्य योनिमें प्रकट होना सफल हो गया और उभय लोकोंमें जितने पदार्थ सुखदायक हैं आपके लिये सभी सुलभ हो गये आप महा मुनिवर हैं। आपके दर्शनसे पाप दूर होता है। आप अपने कुटुम्बियोंके सहित सनाथ हो गये क्योंकि आप जिनोंत्तमोंके पवित्र पथपर स्थित हैं।

हे संजय! आप अनाथोंके नाथ अशरणके शरण हैं, सब राजाओंके राजा और महाराजाओंके महाराज हैं, आप ज्ञानके सूर्य हैं, क्षमाके सागर हैं, हे महाभाग! मेरी आत्मा और देहके ऊपर, बालबच्चोंके ऊपर तथा सकल राजपाटके ऊपर आपका पूरा-पूरा अधिकार है जैसा चाहें उपदेश करें मुझे स्वीकृत है।

हे प्रभो। अज्ञानवश होकर पहले आपको मैंने पहिचाना नहीं था, इसी कारण अति तुच्छ और भद्दे प्रश्नोंको आपसे मैंने किया था; और तपस्याको छोड़कर भोग-विलास करनेकी मैंने आपको व्यर्थ सलाह भी दी थी, मैंने आपका ध्यान भंग कर

आपकी तपस्यामें विघ्न भी डाला था, इसलिये मैं अपराधी हूं। दण्ड के योग हूं तथापि प्रभो! मेरी सब भूलोंको भूल जाइये, साधु सरलचित्त होते हैं अतः क्षमादान दीजिये।

इस प्रकार राजाके अहङ्कारको चूर्ण हुआ देखकर और उसके विनीत वचनोंको सुनकर मुनिराज मुस्कराते हुए फिर ध्यानमग्न हो गये, राजा श्रेणिक भी मुनीन्द्रके उपदेश रूपी अमृतपानसे तृप्त होकर बड़ी भक्तिसे उनकी प्रदक्षिणा की, दण्डवत की, फिर रोमाञ्चित होता हुआ अपने हृदयमें बारम्बार अपने भाग्यको सराहता हुआ, घरको चला गया और विशुद्ध दर्शनका पाथेय पाकर सुविचार मग्न होकर विचरने लगा। वहां पहुंचकर मुनिसिंहके उपदेशोंकी आवृतिको सुनकर राजाके परिजन पुरजन भी धर्मानुरागी हो गये। यदि दोनोंको मुनिसिंह और राजासिंह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।



नाग देवता

इसके शरीरकी चमक फौलादकी तरह खूब काली है। आंखोंमें इतना भयंकर और मृत्युकर विष है कि — जिसे देखकर ही प्राणीका शरीर विषमय होकर यमका अतिथि हो जाता है। जिस समय यह फुंफकारता है, तब आसपासके हरे-हरे घास और बड़े-बड़े वृक्ष तक जलबलकर ढेर हो जाते हैं। यही कारण है कि—मनुष्योंने इस रास्तेसे आना-जाना तक छोड़ दिया है। हजारों गारुड़ी और मंत्रवादियोंने अपनी जानें गँवा दीं, पर चण्डकौशिक किसीके हाथ न आया। उस कराल मूर्त्तिके छेड़ने मात्रसे सैकड़ों स्त्रियोंकी चूड़ियां नष्ट हो गईं थीं और वे अपने सौभाग्य जीवनसे हाथ धो बैठीं। उस वनका नाम सबने मिलकर यमलोक रख दिया है। आह! कितना भारी जंगल कि जिसे इसने जला-बलाकर मैदान बना दिया है। जहां पहले १८ भार वनस्पतियां उगतीं, फलतीं, फूलती थीं आज वही भूमि निर्जीव-सी हो गई है। विधवाओंकी आहोंकी तरह वहां सदा धुआं ही निकलता रहता है।

*   *   *   *

ग्वाल—पूज्यपाद महाराज! महाराज! आप इधर कहां पधारनेवाले हैं?

तरुण तपस्वी—मैं यमलोक जा रहा हूं।

ग्वाल—भगवन! आपके पैरों पड़ता हूं। आप उधर न जाइयेगा, वहां तो भयंकर काली पिरड रहता है। जिसने हजारों मनुष्यों और असंख्य पशुओंका खून पिया है, तथा उन्हें मौतके घाट उतारा है। अतः मेरे आराध्य देव! उस ओर न जाइयेगा।

तरुण तपस्वी—भाई! मुझे मत रोक, मैं उधर अवश्य जाऊंगा, और मुझे तो अवश्य उस नागके बिल तक ही जाना है। क्योंकि आज मेरी समाधि उसके बिलपर ही जमेगी।

ग्वाल—(रो कर) मेरे हृदयके स्वामिन! मैं आपको रोक तो नहीं सकता, परन्तु उसके बिल तक जानेसे आपकी यह कुन्दन-सी काया कुम्हला जायगी और भारी असाता पहुंचनेकी सम्भावना है। आपका यह पवित्र शरीर कुछ उस बलि-कुण्डमें आहुति आने योग्य नहीं है। वहांके लिये तो भगवन्! हमसे निकम्मे विषय-कीट ही बहुत हैं। आप तो संसारको आत्म-सुखी बनाने आये हैं। जगतकी त्रुटियोंकी पूर्ति कीजिये। जगतमें ज्ञानका विकास कीजिये। पर इस कुमौत न मरियेगा।

तरुण तपस्वी—भाई! यह शरीर तो अनित्य, अशाश्वत और अपावन है। इसके सो जानेपर मौत सिरहाने बैठती है और जागते समय आंखोंके सामने रहती है। पशुके चामकी सब बस्तुएं काम आ जाती हैं। पर मनुष्यके सदाके लिये सो जानेपर उसकी कोई

बस्तु काम नहीं आती। मेरी जिन्दगी प्राणी मात्रकी भलाईके लिये है। अर्थात् सबको निवृतिपर लगाऊंगा। मेरा जीवन अज्ञान तममें भूले हुएको सत् मार्गपर लानेके लिये है। यदि मेरे शरीरकी बलिसे उसकी भूलका पर्दा टूट जाय तो मैं समझता हूं कि—यह सौदा मुझे सस्ता ही पड़ा हैं।

* * * *

सांप बिलसे बाहर निकल आया। अपने सामने किसी तेजस्वी पुरुषकी आकृतिको देखकर दंग रह गया, पर फिर भी मारे क्रोधके वह कांप उठा, १०८ डिग्री गुस्सेका पारा चढ़ गया। आंखें तो बांगरके गेहूंकी तरह लाल-लाल हो गईं। तरुण तपस्वीकी ओर रोषकी दृष्टिसे देखा, मगर उन्हें कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने आगे बढ़कर फूंक मारी और आशीविषका बादल फैला दिया। मगर उस ज्ञातनन्दन महावीरको उसका भी कुछ असर न हुआ। यह देख उसे कुछ भय हुआ कि—क्या बात है जो मेरी आंखों और फूंकारकी आग परशुरामकी परशुकी भांति ठंठी हो गई। भूखा सिंह वार खाली जानेपर जिस प्रकार खिज उठता है; उसी तरह खिजियाकर पूंछका फटकार लगाता हुआ फिर फुंकार करता है, जिससे बिषैली गैसका धुंआ बन गया, और आकाश-मंडलको भी वर्षाके जलकी तरह गदला कर दिया। मगर भगवान् महावीरके बज्र कायको कुछ भी हानि न पहुंच सकी। अब तो आज्ञा उल्लंघन करनेपर जिस प्रकार राजा यमरूप हो जाता है, उसी प्रकार यमदंडकी तरह झपटकर प्रभुके अंगूठेमें बलपूर्वक जोरका डंक दिया। तथा

विषैले दांत चुभोकर पोटलीका सारा ही विष उस व्रणमें उंडेलने लगा। जिससे महावीरका शरीर सोनेकी तरह चमक उठा। उनकी तेजस्वी किरणोंसे वह जङ्गल प्रकाशित हो गया। सांपकी उस तेजके सामने आंखें मिचने लगीं। एक दम दंग रह गया। हिमालयसे गंगाकी तरह निकलती हुई रक्तकी धाराको पीने लगा। मानों कोई भूखा बालक माताका मीठा स्तन पान कर रहा है। रक्तपान करते-करते अचरजमें भर गया और रह-रह कर उनके मुंहकी ओर निहारने लगा। और सोचने लगा कि—इनके चेहेरेपर मेरे डंकसे कुछ भी फेर न पड़ा! उसी तरह ऊंचा खड़ा है, जिसे देख २ कर मुझे लज्जा सी आने लगी है। इनकी दृष्टिमें भय और कातरताका नाम भी नहीं है। मगर मुझे देखते ही बड़े-बड़े पहलवानोंके कलेजे दहल उठते थे, डरके मारे कांपकर सिंहके सामने ऊंट-की तरह गर्दन झुकाकर गिर पड़ते थे। पर ये तो स्थाणुकी तरह अचल हैं। यह कौन है। यह कोई साधारण मनुष्य तो नहीं है। और इसके खूनमें दूध जैसा स्वाद क्यों है। मानो कामधेनु गऊके दूधमें मिश्री मिला दी है। अधिक क्या कहा जाय, अमृत जैसा आनन्द मिलता है। अंगूठेसे मानो सुधाका सोत निकल पड़ा है। जिसको पीते-पीते जी ही नहीं अघाता। जी तो चाहता है सांझ तक यह पयःपान इसी तरह करता रहूं। मगर मेरा पेट क्यों फटा जाता है, उकलाई सी आने को है, कलेजा धड़कता है, आह! मालूम होता है यह वस्तु मुझसे हजम होनेवाली नहीं। जी बिगड़ने लगा। मस्तक घूमने लगा, उसे अपने कियेका पछतावा होने लगा,

उसे प्रभुका चेहरा गूढ समस्या मालूम देने लगा। उसकी अकलने कुछ काम नहीं किया। पर कुछ होश आनेपर उसकी दृष्टि प्रभुके मुख-मण्डलपर जमने लगी। प्रभुके होठ हिलकर शनैः-शनैः खुल गये इनकी वाणींका नाद गंगाके कलकल रवकी तरह गूंजने लगा। शब्दकी मधुरिमा मधुसे भी अनन्त गुणी मीठी है। मानो यह मधुरता मेरे कानो तक आ गयी है। और परदेके क्षेत्रको अमृतकी तरह सींचकर तर कर दिया है। प्रभुकी बातें सबकी सब साफ और सीधी सादी हैं। सब कुछ समझमें आगया है। नाम बताकर मानों निधड़क कह रहे हैं कि चण्डकौशिक ! ओ प्रिय नागराज ! कुछ समझ ! कुछ होंशकर ! कुछ अपने आपेमें आ और चेतकर ! " अब भी समय है। मोहकी भ्रमणा दूरकर, यह मोह तुझसे आनादि कालसे चिमटा हुआ है। और तू इसी से कर्म मलमें व्याप्त हो रहा है। उस मोह विभ्रम को मिटाकर भेद विज्ञानका उदय कर क्योंकि तू महारुचिका निधान है, मेरी तरह तुझमें भी उजियाला प्रगट होगा। जो बाहरी धूमधामसे अलग है। वह द्वन्द्व दशासे निकालकर स्थिर भावको प्रधानता देनेवाला है, जिससे अपने ही विलासका सुमधुर स्वाद मिलने लगेगा। अपनेको सत्यार्थ मय जान। जिससे कर्मादि पुद्गलको अपना बताना छोड़ देगा, यह भेद विज्ञानकी क्रिया आत्मासे भिन्न जगत्का ज्ञान करायगी। जिस प्रकार अग्नि मिट्टी और पत्थरसे सुवर्णको अलग कर देता है।

चण्डकौशिक ! जागृति पैदाकर ! मेरी शिक्षापर ध्यान दे !

एक मुहूर्त मात्रमें मिथ्यात्व मोहका ध्वंस करनेके लिये ज्ञानके अंशकी ज्योति जगमगा दे। और सोऽहं हंस :—की ध्वनिसे आत्माको खोजकर बाहर निकाल। और फिर उसके पवित्र लक्षणका भान पैदाकर। उसे पहचानकर प्रिय ! ध्यान भी उसीका कर! और आजन्म पर्यन्त उसी रसको पियेजा! फिर देख कितना आनन्द आता है। इस रीतिसे सविकार रूपसे फैलनेवाले भव विलासको छोड़कर उस मोहका अन्त कर! और अनन्तकाल तक जीवित रह।

चण्डकौशिक ! मानों तू धोबीके घर भूलसे किसी अन्यका वस्त्र पहन आया है। मगर वस्त्रका स्वामी मिल गया है, वह कहता है कि यह वस्त्र तूने मेरा पहिना है। अतः अब इसकी बातपर वस्त्र का त्याग भाव उत्पन्न कर। जिसका है उसे दे डाल, क्योंकि वह तेरा नहीं है। अनादि कालके पुद्गल संयोगको समझ। शरीर तथा कर्मके संयोगी जीवकी अनादिको जान! अबतक उस संगके ममत्वसे विभावसे उलटे भावमें चल निकला था। मगर अब तो जड़ चेतनकी भिन्नताका ज्ञान पैदाकर। तथा अपने और परके स्वरूप को समझ। और पर रूपसे जुदा होते ही अपने स्वरूपका ग्रहण करने लग।"

* * * *

अरे रे! इन शब्दोंने मुझे मतवाला योगी बना दिया। शब्दों-का गुच्छा बनकर अन्तस्तलमें दीपकका-सा प्रद्योत करने लगा। जिसके प्रकाशमें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि—यह आकृति तो

शायद कभी पहलेकी देखी हुई है। परन्तु स्मरण नहीं होता कि—कहां देखी। किस स्थानपर देखी। (जाति स्मरण ज्ञान होनेपर) ओ हो! यह स्वरूप तो मेरा ही है, अब मुझे स्मृति हो उठी, यह मैं ही हूं। यह संयमकी आकृति बनाई गई थी। परन्तु राग, द्वेष, कषायने उस विधि गतिको बिगाड़ दिया। जिसका दंड यह अबोध पशु योनि है। हाय! विषयकी गांठको घोल रहा हूं। भगवन्! जगत्से शत्रुता बांध बैठा, जिनका बारी-बारीसे बदला देना है। मुझे सबका कर्ज चुकाना है। जब खाल खिंचाई होगी तब याद आयगा कि—किसीकी जान लेना चैनकी बंशी बजाना नहीं है। भगवन्! अब तो अपने कियेका पछतावा होने लगा है। चिन्तित हूं कि इन लोगोंसे किस भांति निबटूंगा। समुद्र पार जाना है पर नौका टूटी हुई है। लम्बा प्रवास करना है, पर खानेको कुछ पासमें खर्ची न हुई। दो कोमल भुजाओंसे समुद्र पार क्योंकर जाया जाय।

नागराजकी दो आंखसे आंसुओंकी धारा बहने लगीं। महावीर बोले कि नागराज! अब किनारे आया ही चाहता है, घबराओ मत। आत्माभिलाषा पूर्ण करो, समाधि (उपशान्त मार्ग) पर भावके आकृतिकी पहचान होती है। अतः उसीपर आकर जम जाओ। समयकी डोर पतंग-डोरकी तरह अब तक तो अपने ही हाथ है।

नागराज यह सुनते-सुनते शान्त हो गया, समाधि भावकी पराकाष्ठाको पहुंचने लगा। विषको वम दिया और साथ-साथ कषायको भी। अनन्त अमृत उसके हाथ आ गया। मुंह बंबीमें रखकर

छिपा लिया। मानो अब वह अपने पापी मुंहको क्या कहकर दिखा-यगा, शरीरका सब भाग बाहर है। मगर मानुषोत्तरकी तरह सबका सब स्थिर। जीवित रहनेकी आस और मौतका डर अब जाता रहा। अब तो यमके ही दांत उखाड़ बाहर करना बाकी है।

* * * *

ग्वालोंने छिपकर इस धर्मकी लड़ाईको आद्यन्त देख लिया था। जिसमें एककी भारी हार हुई। मगर जीतनेवालेने भी सिरके साटे विजय लक्ष्मी पाई है। इन्होंने बस्तीमें आकर सबसे कह दिया कि—भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्की जय! आज उन्होंने चण्डकौशिकको जीतकर उसे अपना अनन्य भक्त बना लिया है। यह सब हमारी आंखों देखी घटना है। हार जानेके कारण सांप मुंह छिपाये पड़ा है। उसे अब बड़ी शर्म आने लगी है। विश्वास न हो तो जाकर देख सकते हो।

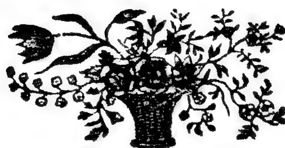
लोकोंका समुदाय सावनके बादलोंकी तरह दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। आनकी आनमें सबने आकर प्रभुकी चरण वन्दना की, और बोले धन्य प्रभो! आपने जनताका एक भारी संकट दूर किया है। विभो! पापीको भी पापसे मुक्त किया और हमें भी जान-मालसे बाल बाल बचा लिया। बलीहारी! वारी जायँ अपने महावीर परमात्मापर। जो सबके संकट निवारणके लिये ही आया है। नाथ! आपने इसपर वह उपकार किया जो उपकार अन्धेपर वैद्यका होता है। आप स्वयं तरण तारण हैं। आपने अपने धर्मके जहाजमें एक पापी सांपको भी विरामके लिये स्थान दिया। नाथके नाथ!

आपके दर्बारमें जाति भेदको स्थान नहीं है। हम तो जातिके चक्रमें फँसे जा रहे थे, मगर आपने हमको हाथों हाथ उबारा है। तारक! आप हमारे सच्चे मार्ग दर्शक हैं। बन्द मार्गको आप खोल चुके हैं। आप ही इस मार्गको निर्भय बना रहे हैं। धर्म-चक्रिन! आपकी जय हो! आपकी जय! हमारे लिये सुखकर हुई। हमारे आत्मारूपीप्रभुके ज्ञान गर्भमें उत्कृष्ट साहसशीलता, सहिष्णुता, कृपा तथा मैत्री भाव आदि सबका सब छिपा हुआ था। वह आपके द्वारा सब व्यक्त हुआ है।

* * * *

इधर लोक धीरे-धीरे सांपको आकर देखते हैं तो एकदम लम्ब-कायको देखकर डरते हैं और भागते है। इतनी कुशल बीतीकी उसका मुंह बिलमें है, जिससे अधिक भयकी जरूरत नहीं पड़ती थी। बहुतसे गुणके अनुमोदक हैं, वे सोचते हैं कि—समझनेका और प्रभु भक्तिका अधिकार प्राणी मात्रमें है। उसे भूला न समझो जो सन्ध्यामें घर आ जाये। मगर एक पक्ष तो उसपर रोष खाकर पत्थर बरसा रहा है। जिससे चोट लगनेपर कई जगहसे शरीर घायल हो गया है। कई यह कहनेवाले भी थे कि बेचारेको मार क्यों रहा है? निर्दय है? तब वह कहता है कि—अरे क्यों न मारू इसने मेरा बेटा डंस लिया था! मेरी स्त्री, मेरा बाप, मेरा यह मेरा वह डंस लिया। अतः अब हम इसके धर्मात्मा बननेपर ईंट' पत्थर, लकड़ीसे सेवा करते हैं। अपनी पूरी वीरताका परिचय दे रहे हैं। पर श्रद्धालुओंने तो यही कहा कि—नहीं, नहीं, अब तो भगवान

ज्ञातनन्दन महावीरका पुत्र है, और हमारा सहधर्मी बांधव है। अब यह शान्त है, इसकी सेवा करो। इसकी भक्ति करो और वात्सल्यता पैदा करो। यह कह किसीने मिठाई चढ़ा दी, किसीने धीरेसे दूध डाल दिया। किसीने उसपर मधु और शर्बत ही डाल दिया जिसकी गंधसे हजारों लाल कीड़ी आने लगीं। जिन्होंने उसका सारा शरीर १५ दिनमें छलनी बना डाला। मगर चण्डकौशिकने जरा-सी करवट न बदली। कितनी भारी शान्ति, कितनी ऊच्च कोटिकी सहनशीलता! तभी तो मरनेके बाद इसे आठवां स्वर्ग मिला। जिसकी स्मृति नाग-पंचमी अब भी उसे प्रति वर्ष स्मरण करा जाती है।



अछूत और जैन

देहलीके किनारी बाजारको सब जानते हैं, जहां गोटा किनारी मिलता है, सिल्मे, सितारे और धुएंका तथा पक्का माल सब लोक यहां ही से खरीदते हैं। अक्सर विवाह शादी के लिये इन आवश्यक वस्तुओंकी साध इसी बाजारमें पूरी होती है, बांगरके तथा कुरुक्षेत्र भूमिके निवासी मनुष्य बरीकी तीयर यहींसे बनवा कर ले जाते हैं। यह जनानी पोशाक होती है, कपड़ा रेशमी होता है, ४०००० कीड़ोंको मारनेके बाद आध सेर रेशम तैयार होता है, इसी ही पाप वस्त्रकी यह घग्घरी होती है। जिस पर ज़रदोज़ी काम कराने यहां ही आना पड़ता है। ग्राम्य जनोंमें इस मालकी खपत रहनेके कारण बहुतसे लोगोंने इसीकी दुकानें खोल ली है। परन्तु लाला मेहरचन्द्रजी जैन गोटेवालेकी दुकान इस बाजारमें पुरानी दुकान गिनी जाती है ये जैसे श्रावक हैं वैसे ही जबानके भी सच्चे और प्रतिष्ठित गिने जाते हैं। इसीसे इनका माल खूब ही बिकता है, आपका मोल और तोल धर्मके कांटेमें ५२

तोले पाव रत्तीकी उक्तिके अनुसार ठीक उतरता था। इसीलिये आप एक सासुनी (एक बात कहनेवाला) के नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। दुकानपर इतनी भीड़ लग जाती थी कि इन्हें जरा सी फुर्सत भी नहीं मिलती थी। १६ घंटे आपकी दुकानमें वसन्तमें कोयलकी टुहुककी तरह रुपयोंकी मीठी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। मन्दीका समय भी इन्हें कुछ नहीं कह सकता था। इसीसे अड़ोस-पड़ोस के दुकानदार इनसे जरा डाह खाने लग गये थे।

* * * *

होलीके समय दिल्लीमें बाहरसे आनेवाले देहातियोंकी वह दुर्गत बनाई जाती है जो गत बन्दरने बएकी की थी। इसीसे लाला बंशीलाल बांगरू भी इन होलीके रंगीले भड़ुवोंसे बचते-छिपते किनारी बाजारमें लाला मेहरचन्दजीकी दुकानपर बड़ी ही कठिनाईसे आ सके। आते ही मुनीमजीसे पूछा कि—लालाजी कहां हैं? मुनीमजी बोले कि—आजकल बारहदरी (महावीर जैन भवन) में साधु महात्मा न होनेके कारण ऊपरके कमरेमें ही सामायिक (ध्यान) कर रहे हैं। लाला बंशीलाल बांगरू प्रसन्न होकर उनके दर्शन करनेके लिये ऊपरकी सीढ़ियोंपर धीरे-धीरे चढ़ने लगे।

* * * *

ऊपरकी छतपर बराबरवाले पड़ौसीकी दीवारसे सीढ़ी सटाकर कुछ कलमुंहे सियार जैसे आदमी नीचे उतर आये हैं। इनमें किसीके हाथमें पिचकारी है, किसीने अपनी हथेलीपर लाल मिर्चोंका लेप

लगा रक्खा है। किसीने तवेकी स्याही तेलसे हाथोंमें चुपड़ ली है। सेठजीको कायोत्सर्ग (प्राणायाम) करते देख सब ठट्ठा मारकर खिलखिला उठे। जिनमेंसे एकने आगे बढ़कर अपने दोनों हाथोंको उनके मुंहपर मल दिया, जिससे हाथका स्याह रंग उनके मुंहपर लग गया। एकने तड़ाकसे जूते मारना आरम्भ कर दिया। परन्तु नीच मटरूने तो लाल मिर्चोंकी भरी हुई एक अंगुलीपर थूक लगाकर उसे आंखोंमें ही रगड़ दिया। पीछेसे क्षुद्र छदामीने डिबियामेंसे महरोलीकी पहाड़ीका काला बिच्छू मोचनेसे पकड़कर उनकी धोतीके अड़ूसेमें रख दिया। फिर क्या था उसने गुस्सा खाकर तड़ातड़ कई डंक मार दिये जिससे उनके शरीरमें दुःसह्य वेदना होने लगी। परन्तु लालाजीकी दृष्टि इन परिषहोंके पड़नेपर भी नाककी डंडीपर ही जमी रही।

लाला वंशीलाल वांगरू ऊपर चढ़ते-चढ़ते इस काण्डको पूर्णतया देख चुके थे। फिर क्या था मारे गुस्सेके काबूसे बाहर हो गये। जेबसे कुछ निकालकर तुरत फायर करनेको थे ही कि उन्हें किसीने आकर पीछेसे पकड़ लिया, यह गुण्डा पार्टीभी भयभीत होकर ६-२-११ हो गयी, और उसी दम वह स्थान फिर शान्तिपूर्ण हो गया।

* * *

बिच्छू उग्र और विषैला था, डंक भी कई जगह मारे थे। परन्तु सेठजीके नाकपर बल तक न पड़ा, भृकुटी उसी तरह सौम्य और सम थी। वंशीलाल इस उत्कृष्ट सहिष्णुता और समभावनाकी

साक्षात् जीवित मूर्तिको देखकर अवाक् सा रह गया मन ही मन श्रद्धाके फूल चढ़ाकर प्रशंसा करता हुआ सोचने लगा कि—यदि इतनी हँसी दिल्लगी कोई मुझसे कर जाय तो सा··········न देता। परन्तु धन्य मेहेरचन्द! आपने अपने स्थायी भाव और गम्भीर शान्तिसे मेरे कलुषित भावोंको भी बदल दिया, और वह भी सदाके लिये। आपका आदर्शमय तथा शान्त जीवन मुझ पामरके काम भी आ गया। अब मैं भी आपकी-सी पवित्र और निर्दोष सामायिक मौन रहकर नित्यप्रति किया करूंगा। अब लोक दिखावा न करूंगा, और आपकी तरह समताको खूब निबाहूंगा।

* * * *

नौ बजते-बजते सेठजीका सामायिक काल समाप्त हो गया। नहा-धोकर खादीके साफ कपड़े पहिनकर कोठीकी गद्दीमें आ बैठे। मुनीमजी विच्छुजड़ीका लेप लगा चुका है। लाला वंशीलालने कुछ माल खरीद कर लिया। तथा २०००) रुपया नकद गिनकर फुर्सत पाई। इतनेमें माल पैक हो गया। धकेलमें लदवाकर स्टेशनपर भिजवा दिया, और अब दोनों सहधर्मी बन्धु कुछ धर्मगोष्ठी कर ही रहे थे कि—इतनेमें एक मेहतरने आकर सेठजीको आदाब अर्ज किया। और चबूतरेके नीचे डटकर खड़ा हो गया।

सेठजी—कहो भाई खचेडू चौधरी! क्या चाहते हो?

खचेडू—सर्कार आपसे कुछ मांगनेके लिये आया हूं।

सेठजी—कहो तो मालूम पड़े, सबकी योग्य सेवा करनेके लिये मैं तो सदैव तैयार हूं।

खचेडू—मेरा एक बीस वर्षकी आयुका अविवाहित लड़का है। क्या कहूं सेठ जी! बड़ा ही परिश्रमी है। सुन्दर और अज्ञानुवर्ती है, बारादरीमें कमाने जाया करता है। वहांके साधुओंकी संगति हो जानेसे मांस और मदिरा ही नहीं बल्कि रातका खाना तक भी छोड़ दिया है, जमीकंद खानेका तो बिल्कुल अटकाव है। बड़ा सीधा सादा और सातफुटा पहलवानसा है। किसीका काम काज करनेसे कभी मुँह नहीं मोड़ता। सदा नीची गर्दन झुकाकर चलता है। सवेरे ही स्नान करके नित्य सन्ध्या करता है फिर कहीं काम पर जाता है। कभी किसीसे तकरार मदारका काम नहीं। अपने काममें धुन लगाये रहता है। आपके धर्मका एक-एक आदेश पाल रहा है। जैन सिद्धान्तके सीखनेका उसे बड़ा ही चाव है। महात्मा लोगों और आपके तफैलसे पक्का जैन बनता जा रहा है। अतः कृपा करके यदि आप अपनी कला उसे प्रदान कर दें तो मैं आपका चिरऋृणी होकर रहूंगा। जल्दी जवाब दीजिये इस विषयमें आपकी क्या मर्जी है? अपनी इच्छाके अनुकूल उत्तर पानेके लिये मैं आतुर हो रहा हूं। कारण आप दिल्ली नगरमें एक सच्चे जैन हैं। आपके यहां एकेन्द्रियसे लगाकर पंचेन्द्रिय तक पांच ही जाति मानी गई हैं। जैन इन वाह्य जातियों और वर्णोंको नहीं मानता। क्योंकि भगवान ज्ञाननन्दन महावीर प्रभुने इन पांच जातियोंके अतिरिक्त छठवीं कोई जाति नहीं बनाई है। आकार तथा शरीर रचनामें और संतान प्राप्त करनेमें मनुष्यमात्रमें एकसी शक्ति है।

*　　*　　*　　*

यह सुनकर लाला वंशीलाल बांगरू तो क्रोधमें जल बल कर राखसा हुआ जा रहा था। उसके नथने फूल गये आंखें सैंदूरकी तरह लाल हो गई। सारे शरीरमें पसीना-पसीना होगया। रह रहकर जीमें यह आता था कि—इस बदमाशको नालीमें दे मारूं, और इतने जूते लगाऊं कि—पाजीकी ठठरी गंजी हो जाय। यह क्या वकता है जैसे छोटा मुँह बड़ी बात हो। परन्तु लालाजीकी शर्मने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया, और सेठजी उस भंगीसे यह बोले कि—देवानुप्रिय! मुझे अपनी कला किसी न किसीको तो अवश्य सौंप ही देनी है, परन्तु तुम्हारा लड़का भी औरोंकी तरह सुन्दर-धर्मात्मा, सुन्दर-युवक और मनुष्य ही है। तब मुझे उसके लिये कब ना ही हो सकती है। किसी भी प्राणीके साथ घृणाका बर्ताव करना एक समदर्शी श्रावकके लिये तो कभी शोभा नहीं देता।

पर मुझे सच पूछो तो अपनी कला सौंप देनेमें कतई इन्कार भी नहीं है। यदि आसपासके मेरे ये पड़ौसी बन्धु और मेरी जातिके सहबन्धु इसमें कुछ भी वाधक न हों तो मैं इस आदर्श लग्नको अभी कर डालूं। पर क्या करूं मैं जिस जातिमें रहता हूं उनका बताया हुआ नियम पालन मुझे बलात्कार करना पड़ता है, और इस २० वीं शताब्दीमें यह अनिवार्य-सा हो गया है। भगवान् महावीरकी आज्ञाओंको भुलाकर वे संसारकी देखा-देखी कर रहे हैं। प्रभु तो यही कहते हैं कि "जगत्की देखा-देखी मत करो।" संसारके नीचे आज जैनोंका भी हाथ दबा पड़ा है पर यदि सजातीय भाई आज ही जाति भेद दूर कर दें तो प्रसन्नतया मैं तो सबसे पहले तेरी आशा पूरी करूं।

खचेड़ू अपना-सा मुँह लेकर चला गया। परन्तु बंशीलालपर इसका बड़ा ही प्रभाव पड़ा। सेठकी अभेद वृत्तिपर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, और बोला कि—यह सारा बोझ उन गुण्डोंपर ही पड़ गया है जिन्होंने इसे सिखाकर भेजा है और जो जाति पांतिके दास हैं।

* * * *

मस्तक मूंडन करनेसे साधु नहीं हो जाता, ॐकारका उच्चारण करनेसे कोई ब्राह्मण नहीं बनता। अरण्य वाससे मुनि और भगवे वस्त्र धारण करनेसे तपस्वी नहीं होता।

समभावसे साधु होता है, ब्रह्मचर्य पालन करनेसे ब्राह्मण होता है। इसी प्रकार ज्ञान हो तो मुनि तथा तापस कहलाता है।

—ज्ञातृपुत्र महावीर भगवान।



चावल-मूंग

मेवात देशको दो भागोंमें अलग करनेवाले काले पहाड़को सब जानते है। इसकी ऊंचाईका मेवोंको अब भी गर्व है। यद्यपि अपनेको ये मेव हिन्दुओंकी लापरवाहीसे कट्टरसे कट्टर मुसलमान समझने लगे हैं, तथापि इनके नाम संस्कार और विवाह संस्कारमें अब भी दियासलाईमें आगकी तरह हिन्दुत्व छिपा पड़ा है। इस नगराजके योगियोंकी कृपा इन अबोध मेवोंपर अब कुछ कम रह गई है। जिससे ये अब रंग बदलने लगे हैं। यहांपर दूर-दूरसे सावन मासमें वैद्य लोक आते हैं और कच्ची औषधोंपर अपना चिह्न बना जाते हैं, और पौष माघमें आकर अपनी उन जड़ियोंको ले जाते हैं। पर इन बेचारोंको मधुके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। तिजारेके रास्तेसे इसी पहाड़मेंसे एक झरना निकलता है। अनुमानतः एक-डेढ़ मीलपर जाकर ज़मीदोज़ हो जाता है। इसी झरनेके नामके पीछे अपना नाम लगाकर फिरोज़शाहने वहां झिरकाफिरोज़पुर शहर बसाया था। अब यहां तहसील है, गुड़गांव

जिलेके आश्रयतले है। मगर लोक यहां बेरोज़गार हैं इसीसे यह नगर उजाड़-सा लगता है, और इसका आर्थिक सौभाग्य विधवा स्त्रीकी भांति नष्ट-सा हो गया है। मगर अबसे १०० वर्ष पहले हरकंटराय वरसे यह नगरी सधवा कहलाती थी।

* * * *

हरकंटकरायकी हवेली बनकर तैयार है। लगभग एक लाख रुपया व्यय हुआ होगा। पर सेठके मनको अभी सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें यही ध्यान आता है कि मेरी बैठक तो पक्की बन गई पर इससे क्या लाभ हुआ। मेरे सजातीय भाईओंको तो खाने तकके लाले पड़ रहे हैं, पर यदि वे अपनी दुःखकी पुकार श्री जीसे करें तब भी ठीक नहीं बनता। क्योंकि श्रीजी तो वीतराग हैं, वीत-रागताके नाते वे क्या कभी किसीको पौद्गलिक सुख थोड़े ही दे सकते हैं। कारण सरागी जन वीतरागसे सरागी प्रीति द्वारा इच्छा पूर्ण नहीं कर पायगा। उनसे तो वीतरागी प्रीति जोड़ें तब ही जोड़ी ठीक बन सकती है। परन्तु मैं तो अपने सहधर्मी भाइयोंकी दरिद्रताकी बेड़ियां काट सकता हूं! क्योंकि मेरे पास असीम सम्पत्तिका साधन है। इसको अधिकाधिक वितरण करनेपर भी अपने जीवनमें उसका अन्त नहीं पा सकता। क्योंकि कुएंसे पानी चाहे जितना निकाला जाय पर कुंआ खाली नहीं होता। इसी प्रकार धनको सुकृतमें लगाया जाय तब भी समाप्त न होगा। अतः इसका मोह बुद्धिसे संचय कर रखना भला नहीं है। क्योंकि जंगली कुएँका पानी न निकलनेपर वह सड़ जाता है और उसमें विषैली

गस हो जाती है। अतः जैन और लक्ष्मीपात्र होकर दूसरी ओर अपने भाइयोंकी तथा देशवासियोंकी दुःखद दशा सहन नहीं कर सकता। आज ही सत्रागार खुलवा देता हूं। जिससे अन्न और वस्त्रका दुखिया कोई न रह पाये, और यह सब कुछ करते हुए उसे कुछ भी श्रम न पड़ा।

* * * *

भयावह अन्धकारसे रात भरपूर है। कई घरोंसे कराहनेकी आवाज़ आ रही है। मानव-पुत्रोंके पेटमें जाठरी आग लंकाकी-सी आग निकल कर उन्हें जला रही है। तीन-तीन दिन तकके उपवास निर्जला एकादशी और संवत्सरीकी तरह अपने आप हो जाते हैं। लोगोंके घरोंमें निर्जला एकादशी स्थान पाकर बस गई है। पर ये सदाव्रतका अन्न लेने नहीं जाते। कारण उनकी मध्यम स्थिति है। इज्जत-आबरूवाले हैं, सफेद कपड़े पहनते हैं अवश्य, परन्तु पेट खाली है। न मांग सकते हैं, न श्रमिक होकर श्रम ही कर सकते हैं। मुफ्तका अन्न लेकर खानेमें पूरी लाज लगती है। इस बारके दुर्भिक्षने इन्हें पूरा निढाल बना दिया है। बेचारे जंगलसे कुछ शाक-पात लाकर खा लेते हैं और अधपेट भूखे पड़े रहते हैं। इस यन्त्रणाको बूढ़ा आदमी चाहे सह सकता है, परन्तु नन्हें और सुकुमार बालकोंको यह ज्वाला कब जीवित रख सकती है। क्योंकि वस्तु जितनी अधिक सुकोमल होती है अग्नि उसे जल्दी ही भस्म कर डालती है। इसीसे नं० ६ की गलीमेंसे रोनेकी आवाज आ रही है। जिसे सुनकर पत्थर जैसा दिल भी

पिघल जाता है। इस रोदनने गलीवालोंकी उदराग्निको और भी कराल बना डाला।

*　　*　　*　　*

"मां! अरी ओ मां! कल कुछ मेरे लिये खानेका प्रबन्ध करेगी या नहीं। सच बता दे। तीन दिनसे बहकाती ही रहती है। कल यदि जलपान भी न दिया तो याद रख सवेरे ही प्राण दे दूंगा।"

"बेटे! मेरी जान! सबर कर। तेरे पिता दिल्ली गये हैं। कहीं न कहीं नौकरी अवश्य लग गई होगी। एक मास पूरा होने आया है। आशा ही नहीं बल्कि ठीक कहती हूं कि—कलकी डाकसे कुछ रुपया अवश्य आवेगा, फिर दिनमें तीन बार जलपान कराऊंगी मेरे लाल! पर अधीर न हो मेरे बेटे! जरा सबर सन्तोष कर सबरका धन गरीबोंका धन है। वे इसके ही सहारे सुखसे दिन काटकर जीवित रह सकते हैं।"

"मां! मैं सच कहता हूं सबर करनेसे भूख नहीं मिटती। सबर करते-करते आज तीसरा दिन बीता रहा हूं। अन्न और दांतके अन्दर वैर पड़ जानेसे दोनों रूठे बैठे हैं। भला इस सबरका भी कभी अन्त आवेगा। देखती हो मां! इन हवेलिओंसे बराबर तीनों समय धुंआ उठा करता है। हलवा पूरी बननेकी गन्ध आती रहती है। मगर हमसे बदनसीबोंके घरोंको आग जलाती भी नहीं जिससे रोजका संकट तो मिट जाता। मां! ये कहनेको तो दिगम्बर हैं मगर इनके घरोंमें लक्ष्मीका ओर छोर नहीं। ये मौज-मजे उड़ायें और हमें एक-एक दानेकी सांसत! क्या हम

उनके बिरादर भाई नहीं हैं ? क्या उन्हें हमारा तरस नहीं आता ? हाय रोटी ! भूखा मरा जा रहा हूं ! मेरी अच्छी अम्मां ! मैं भूखसे मरा !

* * * *

ओ मनसुखा ! जरा ६ नंबरकी गलीसे बुधसेनको तो बुला ला।

मनसुखा 'जो हुकुम' कहकर बुधसेनको कन्धेपर रखकर ले आया। लड़का कन्धेसे उतर कर एक तरफ प्रणाम करके बेसुध हो गया। मगर उसे जल्दी ही मुँहपर गुलाब छिड़ककर होश दिलाया, कुछ गर्म दूध पिलाया लड़केको कुछ सुध आई और सचेत हुआ तब हरकंठरायने जेबसे १००) रुपया निकाल कर बुधसेनको देते हुए कहा कि—ये रुपये हमारे जुगल बिहारी मुनीमके हाथ तुम्हारे बापने भेजे हैं। अतः ले जाओ, और यह भी कहला भेजा है कि १००) रुपया मासिक वेतनपर जंगलीमल केदारनाथके यहां मुनीम हो गया हूं। अतः चिन्ता न करना। जिस वस्तुकी इच्छा हो सेठ-जीकी दुकानसे ले जाया करना, मैं १००) रुपया इन्हींकी दुकानपर भेजा करूंगा। महीनेकी अन्तकी तिथिको उनसे ले जाया करना। अतः अपने पिताके आदेशके अनुसार १००) रुपया प्रति पूर्णिमाको ले जाया करना समझे ! यह कहकर १००) रुपया देकर बुधसेनको बिदा किया। रुपया पाते ही मानो शरीरमें बिजली-सी दौड़ गई। और वह हंसते-हँसते घरकी ओर भाग गया।

* * * *

रातके नौ बजे हैं, सामायिक पूर्ण हो गई है, वे स्वयं अपने एक गूंगे नौकरके साथ नित्यके नियमानुसार कपड़े और रुपयेकी थैली रोज लिवा ले जाते हैं, प्रत्येक नागरिकके घरमें रुपयों और मोहरोंकी पुड़ियायें इस ढंगसे डलवा देते हैं कि—जिससे किसीको उनका परिचय ज्ञात न हो, तथा किसीके घर छींट, लहरिया, खादी, मलमल, कम्बल आदि अनेक भांतिके थान डाल देते हैं। यह सब काम १२ बजनेके बाद पूरा करके फिर अपने शयनागारमें आकर विश्राम लेते हैं। यह उनकी नित्यकी चर्या हो गई थी। इतना कुछ किये विना उन्हें चैन तक न पड़ता था।

सवेरा होते ही गली-महल्लेवाले आपसमें यह बातें करते कि—कोई देवता फिरका फिरोजपुर पर प्रसन्न हो गया है, जो हमारे घरोंमें रुपयों, मोहरों और कपड़ोंकी वर्षा सदैव कर जाता है। धन्य भारत देव! तुम इस समय अभेदरूपसे हिन्दू-मुस्लिम नर देवोंकी गुप्त सेवा बजा रहे हो। अतः तुम ईश्वर भी हो और खुदा भी, तथा साथ-साथ कर्म फल भी हो।

इसी खुदा और ईश्वर तथा कर्मने हमारे शरीरमें जान डाली है। वर्ना इस दुर्भिक्षसे तड़पकर कभी के मर गये होते।

× × × ×

आनू नाईराजा सबके घरोंमें बुलौआ दे आया है। नियत समय-पर सब लोक सेठ हरकंठराय दिगम्बर जैनके भव्य भवनमें आकर उपस्थित हो गये हैं। आज घरका चौक मानव मेदनीसे खचाखच भर गया है। तिल धरनेको भी जगह नहीं है। सब लोगोंके

एकत्र हो जानेपर एक वृद्ध पुरुषने नतमस्तक होकर पूछा कि— सेठ! आपने आज हम सबको किसलिये बुलवाया है। आज्ञा कीजिये, हम सब वही कार्य जी-जानसे करनेको तैयार हैं।

सेठ हरकंठरायने पंचायतके सन्मुख हाथ जोड़कर कहा कि— पिछले दिनों मूंग और चावलके कई बोरे मंगवाये थे, मगर चावलकी बोरियोंके ऊपर मूंगकी बोरियां न जाने किस प्रकार टूट गईं या चूहोंने कुतर डालीं, जिससे मूंग चावल एकमेक हो गये हैं। अतः यदि एक-एक थाली मूंग चावल आपलोग अलग करदें तो सब माल अलग-अलग हो जाय और आपका बड़ा आभार मानूं।

इसपर सबने एक स्वरमें कहा कि इस वर्ष दुर्भिक्षके कारण बाजारमें कुछ काम भी नहीं है। और इसके लिये हमारा कुछ भी हर्जा न होगा। बल्कि सब मिलकर बैठेंगे तो जी भी बहलेगा।

सबके हाथोंमें एक एक थाल मूंग चावलका दिया गया, ये सब थोड़ी ही देरमें अपना काम पता देते हैं। काम करते समय बातोंकी खूब झड़ीसी लगी रहती है। सेठ छुपकर सब कुछ सुन लेता है। सबकी आर्थिक स्थितिका पता मिल गया है। साथ-साथ सबकी यथोचित आवश्यकतायें भी जान ली गई। ठीक १० बजते ही सब उठ खड़े होते हैं। सेठ सबका मार्ग रोककर विनयसे नत होकर कहता है कि— कल देहलीसे एक बंडल खुशबूदार हिंग्वाष्टक चूर्णका डब्बा आया है। अतः आप भी चूर्ण लेते जाइये। इसके खानेसे बालकोंमें बड़ी फुर्ति रहती है। खाना हजम होता है। पेटका रोग मिट जाता है। जी नहीं मिचलाता। पेटका दर्द शान्त हो जाता

है। यह कह १-१ पुड़िया सबकी जेबोंमें रख दीं। बाहर आनेपर लोग क्या देखते हैं कि—सेठकी माताजी आज लड्डुओं की प्रभावना कर रही है। सबने माताके हाथसे एक-एक मोदक भी लिया। घर आकर क्या देखते हैं कि—पुड़ियाओंसे निकलते हैं मोती और मोदकोंसे मुहरें, आज इस दरिद्र भारतको ऐसे-ऐसे लाखों हरकंटरायकी भारी आवश्यकता है।



कसौटी

जंगलमें सन्ध्या समय हो गया था, और उसकी छाया चारों ओर खड़े हुए वृक्षोंपर जम रही थी। कलरव करते हुए पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर पीछे लौट आ रहे थे। सूर्यदेवकी किरणें पश्चिमगिरिकी भेंट करने तैयार हो रही थीं, और उस जंगलमें चारों ओर शान्तिका साम्राज्य फैल रहा था।

ऐसे शान्त समयमें पद्मासन जमाकर अपने घुटनोंके ऊपर अपने दोनों हाथ रखकर मस्तक ऊंचा किये दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर स्थिर करते हुए जामुनके वृक्षकी छायामें बुद्धदेव समाधिमें मग्न थे।

उस कुंजमें शान्ति इतनी अधिक फैल रही थी, और वहांका वातावरण प्रेम-प्रवाहसे इतना अधिक विस्तृत था कि—यदि कोई अचानक अनजान नास्तिक पुरुष भी उस मार्गसे चला जाता हो तो भी अपनी अश्रद्धा छोड़कर भक्ति और पूज्य भावकी लगनसे भूमिपर अवश्य झुककर नम जाता।

विकरालसे विकराल प्राणी भी उस पवित्र महात्माके अद्भुत योग शक्तिके प्रबल प्रतापसे वहां आते ही अपना जातीय दुस्वभाव छोड़ देते और नम्र तथा विनीत हिरन जैसे बन जाते थे।

इतनेमें एक हिरणी जो अपने बच्चोंके साथ खेलती थी, और जिसने उस महात्माकी कक्षके नीचे आश्रय ले रक्खा था, उसने चमक कर ऊपरकी ओर नजर उठाकर देखा।

इसने दूरसे पैरोंकी कुछ आहट सुनी, किसीको उसने वहां शीघ्रता सूचक पैरोंसे आते देखा, थोड़ी ही देरमें वहां एक टोली आ गई। उस टोलीका नायक एक युवक था। जो देखनेमें और शक्ल-सूरतसे गेहुंए रंगका था। परन्तु उसकी मुद्रा प्रतापशालिनी थी। उसने ज़रदोज़ी पोशाक पहन रक्खी थी, और एक बहुमूल्य माला उसके गलेमें अजब शोभा दे रही थी।

अपने साथ आये हुए लोक समुदायको एक स्थलपर खड़े रहनेकी आज्ञा देकर वह स्वयं बुद्धदेवकी ओर आ रहा था। जब वह महात्माकी भव्य, तेजस्वी और शान्त मूर्त्तिके सामने आया, और अत्यन्त भक्तिके भावसे उस तरुण तपस्वीके पैरोंमें गिर पड़ा। फिर वह खड़ा हो गया और नीची निगाह रखकर, दोनों हाथ मिलाकर वह पूर्ण भक्ति करता हुआ शान्त स्थितिमें कुछ समय तक उसी प्रकार खड़ा रहा।

बुद्धदेव कुछ भी न बोले, परन्तु उनकी निर्मल दृष्टिमें से प्रेमका प्रवाह वह रहा था।

अन्तमें युवक अधीर हो उठा और बोला कि—भगवन्!

महात्मन् ! आपके लिये भाव पूर्वक नमस्कार ! कंचन नामक दूर-वर्ती देशसे मैं यहां आया हूं। मेरा नाम चन्द्रसिंह है। मैं राज-पुत्र हूं, राज्यका अधिकारी हूं. आपकी सेवामें कुछ मांगने आया हूं; भगवन् ! जबसे आपका नाम सुना है तबसे मैंने ज़रासा भी आराम नहीं लिया है। एवं मेरे चित्तको शान्ति भी नहीं आती, मेरे राज्य, महल, कोष मुझे अब सुखी नहीं कर सकते। मेरे मित्र एवं मेरी स्त्रियोंसे मेरे मन और इन्द्रियोंको सन्तोष नहीं, अब तो मैं उच्च जीवन बितानेके लिये आतुर हूं। कृपालो ! मुझे अपने एक पामर शिष्यके रूपमें स्वीकार करें। मेरे जैसा सच्चा भक्त आपको भाग्यसे ही मिल रहा है।

बुद्धदेव अपनी शान्तिको संभाले हुए थे, दयापूर्ण दृष्टि उस युवककी ओर फेर दी। परन्तु मुँहसे एक अक्षर भी नहीं कहा। चन्द्रसिंहने अपनी करुण कहानी अगाड़ी चलाई—

देव ! गुरो ! आप मुझे कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो ? क्या मैं इस अधिकारका पात्र नहीं ? प्रभो ! मैंने अपनी बाल्या-वस्थासे ही निष्कलंक जीवन बिताया है, सद्गुरुका सेवन किया है। धर्मके नियमानुसार वर्ताव किया है, और धर्मशास्त्रोंका दिलसे परिश्रमके साथ अभ्यास किया है। क्या इतनेपर भी प्रभो ! आपका ध्यान मेरी ओर नहीं खिंचा ? क्या मैं आपका शिष्य नहीं हो सकता ?

'न' मात्र इतना ही उत्तर मिला।

देव ! भदन्त ! तब आपही कहिये, मैं आपकी इच्छाका

अनुसरण क्योंकर करूंगा। यह जन सब कुछ सहनेको तैयार हैं, शिष्यत्वको पानेके लिये मुझे अब अगाड़ी क्या करना चाहिये वही बतायें तो बड़ी कृपा हो।

'खोज कर ! तुझे मिलेगा'

'किसकी खोज करू' युवकने उदासीकी आवाजमें कहा।

गौतम बुद्धने कुछ भी जवाब नहीं दिया, तथापि वह युवक बोलता ही रहा, 'तथास्तु'! मैं तलाश करूंगा, आपका आशय मुझे कसौटीपर लगनेसे तो नहीं है ?

'कदाचित् हो'

'आपसे फिर कब आकर मिल सकूंगा ?

'चतुर्मास बीतनेपर सातमें मासमें'

चन्द्रसिंहने मस्तक नवा दिया, मुँहसे कुछ न बोल सका और जमीनपर सो गया, और वह इस स्थितिमें बहुत समय तक पड़ा रहा। कुछ समयके अनन्तर वह धीरे-धीरे उठ बैठा। परन्तु उसकी बोलती बंद थी, और वह हिली हुई हिरनी उस महात्माकी गोदमें मस्तक रखकर अपने बच्चोंके पास ऊंघ गई।

बुद्धदेव फिर समाधि मग्न हो गये।

* * * *

वर्षा ऋतु आकर चली गयी, बातकी बातमें सात मास बीत गये, और उसी जामुनके वृक्षके नीचे उसी कुंजमें बुद्धदेव बैठे थे, सूर्य अस्त होनेकी तैयारीमें था, आकाशमें बादलोंकी कुछ रेखाएं दीख पड़ती थी, और किसी नये तूफानकी निशानीके रूपमें

परिणत हो रही थी। हवा भी खूब भारी हो चली थी, और घोट भी बहुत हो चुका था, मगर आज उसका अन्त है।

उस जंगलमें कोई भारी तूफान आनेवाला है, इस विचारसे वनके प्राणी उस महात्माके समीप आश्रय लेने दौड़े आ रहे थे। पासके उगे हुए वृक्षोंपर पक्षियोंके गोलके गोल कलरव कर रहे हैं, और एक छोटा-सा बाघका बच्चा उस बुद्धदेवके पैरोंमें खेल रहा था और मानो उसे आनेवाली तूफानकी कुछ भी खबर न थी, इसीसे निर्भय पड़ा था। सबसे पहले चक्करदार गूंजनेवाला वायु आया, इसके पश्चात् बादलोंकी कड़क और बिजलीकी चमकके साथ मूसलधारसे पुष्कलावर्त मेघ पड़ने लगा। सबके सब पक्षी वृक्षोंपर चढ़ गये, भारी वर्षा हुई, मगर उस जामुनके वृक्षपर उस भारी मेघका जरा-सा भी असर न हुआ। उस बुद्धदेवपर पानीकी एक भी बूंद न पड़ी।

वर्षाका तूफान बहुत देर तक चला, परन्तु दृढ़ इच्छावाला वह पुरुष किञ्चिन मात्र भी अपने प्रयाससे विचलित न हुआ। संध्या समय होते ही चन्द्रसिंह वहीं बुद्धदेवके पास आ पहुंचा, तथा वहां आते ही उसके उद्गार इस प्रकार आपसे आप निकल पड़े।

भदन्त! मैं इस समयके लिये बड़ी ही अधीरताके साथ राह देख रहा था। अतः मैं अब यथा समय आ पहुंचा हूं, और वह समय भी शायद आ गया है। प्रातःकालके बाद सन्ध्याकाल और सायंकालके अनन्तर प्रातःकालका चक्र चल रहा है। अब वह निर्धारित समय आ गया है। आपकी बताई हुई कसौटीमें मैं

बीस विश्वे सफल हुआ हूं। मैंने अब तक शुद्ध जीवन ही विताया है। सब प्रकारके भोग विलास और वैभवका मैंने निषेध कर दिया है। इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर मैंने नितान्त उदासीन भाव रक्खा है। मेरे महलके वैभव और सुखकी ओर भी मैंने लक्ष्य नहीं दिया। मेरा समय केवल एकान्तमें लम्बे समय तक ध्यान करनेमें ही गया है। अब मुझमें किसी प्रकारकी अशुद्धि नहीं है। विभो! इस समय तो मुझे अपने शिष्यके रूपमें स्वीकार करोगे?

'न'

चन्द्रसिंह यह सुनकर एकदम घबरा गया, उसके मनमें भयंकर खेद व्याप्त हो गया, और अपने रूमालसे मुख छिपा लिया। उसकी आंखोंमें उस समय आंसू भर आये थे, और बहुत देर तक एक शब्द भी मुँहसे न बोल सका, परन्तु धीरतासे काम लेकर कम्पित स्वरमें इस तरह बोलना आरम्भ किया।

महात्मन! क्या आप अपने इस तुच्छ सेवकसे न बोलोगे? कृपालो! क्या नकार कहनेका कुछ कारण न बताओगे?

बुद्धदेव समाधिसे अभी ही उठे थे, चन्द्रसिंहको देखकर चीता उसे घूरकने लगा था। उसने अपने प्रेममय हाथके संकेतसे उसे शांत किया मेघकी गर्जना बंद हो चुकी थी, और बुद्धदेवके मुखसे निकलनेवाले शब्दोंको सुननेके लिये उस समय पवन भी शांत हो गया था। बुद्धदेवने मधुर शब्दोंमें उत्तर दिया।

"उत्तम राजकुमार! जिस कसौटीसे तुझे पार होना था, वह कसौटी बाह्य जगतमें मिलनेवाली कसौटीके समान नहीं। मैंने

तुझे तेरे सुख वैभव और तेरी स्त्रीके त्यागनेके लिये कब कहा था। एवं यतिके समान शरीरको कष्ट देकर रहनेका भी मेरा आदेश न था। जिस कसौटीसे तुझे पार होना था, वह कसौटी तेरे पूर्व जन्मके कितने ही कार्योंके परिणाम रूप स्वभावसे ही आई हुई है। अपने महलमें वापिस जाओ! और एक सद्गुणी मनुष्यके समान अपना जीवन बिताओ! अभी शिष्य बननेके योग्य नहीं हुआ है?

उसके कपोलोंपरसे मारे शर्मके पसीना टपकने लगा, और बड़ी ही आतुरतासे चन्द्रसिंहने यह प्रश्न किया—

भगवन! मैं किस कसौटीमें से निष्फल निमटा हूं, कृपा करके आप समझायँगे? जिससे कि मुझे अधिक शर्म आयगी। तथापि मैं उससे जरा भी घबरानेवाला नहीं, नाथ! "मैं तो सच्चे अन्तःकरणसे प्रकाशकी शोधमें हूं।"

बुद्धदेवने जवाब दिया कि—मैं तुझे वह भी बताऊंगा। पहली कसौटी झूठा कलंक लगानेकी थी। हे उत्तम गुणवाले राजकुमार तेरे निजके महलमें ही तूने अपने पिताकी राजसभामें क्या वह अपराध नहीं किया था? जिसका कि तुझपर ही अभियोग लगाया गया था। क्या वह विषय तुझे याद है? लोगोंके मनमें इस विषयमें सत्य क्या है, जहां तक वह बराबर समझमें न आ जाय वहां तक बाट देखे विना ही. अथवा पहले किये हुए कर्मोंका परिणाम रूप यह कलंक तुझपर आया हुआ है। अतः उसे धैर्यसे सहन करना चाहिये। यह विचार किये विना तू अपनी ज़ातका

बचाव करनेके लिये कितना आतुर हो गया था। अपनी निर्दोषता सिद्ध करता था, और उन आरोप करनेवालोंके सामने कदम बढानेके लिये भी तू तैयार हो गया था। इस प्रकार तू पहली कसौटीसे निष्फल सिद्ध हो जाता है।

चन्द्रसिंह फीका पड़ गया, और सहसा बोल उठा कि—"हां यदि मैं उस आरोपका पात्र होता तो मैं उसे सहन कर सकता था, परन्तु मैं तो यह जानता था कि—मैं निर्दोष हूं।"

"श्रेष्ठ और सद्गुणी मनुष्यको अपनी निर्दोषता अवश्य सिद्ध करनी चाहिये, और अपना बचाव भी करना चाहिये। परन्तु जो 'मुमुक्षु' के मार्गमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखता हो, तथा जो मेरा शिष्य होना चाहता हो, उसे अपने ऊपर होने वाले अन्याय और निन्दा होनेपर अपने बचावके लिये एक भी शब्द न कहकर उसे सुनना चाहिये। उसे कीर्तिका मुकुट पहननेके लिये एवं अपकीर्तिका सेहरा पहननेके लिये समान रीतिसे उदासीन भाव रखकर तत्पर रहना चाहिये"

चन्द्रसिंहने मस्तक झुका दिया,

बुद्धदेवने अपना प्रवाह बढ़ा दिया—

दूसरी कसौटीमें तेरी स्वार्थवृत्ति, तेरी अहंता. तेरा स्वार्थी राग तेरे बीचमें आ गया, तू अपने ही यक्ष नामके मित्रको अपनी ज़ातकी सदृश ही चाहता था, तुम दोनोंमें गाढ़ संबंध था। इतनेमें भल्लिक नामक किसी पुरुषने तेरे पिताकी राजसभामें आकर पुकार की। उसे उस यक्षकी कारणवश आवश्यकता थी। अतः उसने यक्षका

हृदय अपनी ओर आकर्षित करना आरंभ किया। उसकी मित्रताका सम्पादन करनेके लिये अत्यन्त आतुर था, इसीसे वह तुझे प्रीतिमें विघ्न कर्ता मालूम देने लगा। यक्षको तू यक्षके लिये न चाहता था। बल्कि यक्षके साथ की हुई मैत्रीसे मिलनेवाले आनन्दके लिये ही तू उसपर प्रीति रखता था। तुझे उसकी उपाधिके ऊपर अनुराग था, और इस रागके मूलको उखेड़कर फेंकनेके बदले, और उस भल्लिक और यक्षके अन्दर बढ़नेवाली प्रीतिसे आनन्द माननेके स्थानपर तेरे हृदयमें एक प्रकारका भारी तूफान आ निकला। भल्लिकके मार्गमें यथाशक्य विघ्न डालनेके लिये तूने कुछ भी कसर न छोड़ी, और तेरे हृदयसे क्रोधका प्रवाह निकल कर भल्लिककी तरह बहने लगा जिसे तेरे लिये दूसरी निष्फलताका कारण कहना चाहिये।

चन्द्रसिंहने बड़े वेगसे उत्तर दिया—

"मैं यह जानता था कि—भल्लिक स्वार्थके लिये यक्षकी प्रीतिकी शोधमें है, अपने मित्रको चेतावनी देना और भल्लिकके जालसे उसका बचाव करना मेरा कर्तव्य न था?"

क्या तुझे यह विश्वास है कि भल्लिकका स्वार्थी प्रेम समय निकलनेपर शुद्ध नहीं हो सकता था? वह प्रीति किसी दिन सच्चे अन्तःकरणकी न होती? क्या निश्चय बांध कर ठीक कह सकते हो? राजकुमार! अपनी कीर्त्तिकी तरह अपने रागका भी श्रेष्ठ और सद्गुणी मनुष्य बचाव करता है। परन्तु जो मुमुक्षके मार्गमें प्रविष्ट होकर मेरा शिष्य होना चाहता हो—उसे अपने अत्यन्त

अनुरागकी वस्तुका त्याग करनेके लिये हँसते-हँसते तैयार रहना चाहिये। उसे स्वार्थ और ईर्ष्याका निकम्मापन अपने हृदयमेंसे खींचकर निकाल डालना चाहिये। इस प्रकार करने जा रहे हो और हृदयमें रक्तकी धार बह निकले और जगत् शून्य मालूम देनेपर भी वह सब कुछ उसे शान्त चित्तसे सहन करना चाहिये। श्रेष्ठ राजपुत्र! तेरे पिताका खजाना, इन्द्रिय सुख और जगतकी कीर्ति ये सब तुझे आकर्षित करके अपनी ओर खेंचनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, और इससे उनका त्याग करनेमें तूने कोई महत्वका कार्य नहीं किया है। जब असली त्याग और आत्म-भोग देनेका प्रसंग आया तब तेरा धैर्य छूट गया। आत्म-भोगका दिव्य साफा तू न बांध सका। जो प्रेम प्रेमपात्रका ही सदैव कल्याण चाहता है, जो प्रेम अर्पण तो करता है परन्तु बदला लेनेकी आशा नहीं रखता, उस प्रेमको प्रसंग पड़नेपर तू नहीं दिखा सका है।"

चन्द्रसिंहने अपना मस्तक फिर झुका लिया; अब क्या करना चाहिये यह उसे बिलकुल न सूझा, तब उस ऋषिकी ओर दृष्टि डालकर इस प्रकार निवेदन करने लगा—

भगवन! एक बार फिरसे आज्ञा कर दीजिये मुझे एक बार पुनः और शर्ममें डाल दीजिये, मेरे ज्ञानके चक्षुओंके आगे पर्दा पड़ गया है, अब जो अन्धकार आपकी दृष्टिके सामने दीख पड़ता है, इससे भी अधिक गहरे अन्धकारने मेरी दृष्टिको अन्धा बना दिया है। अतः मुझे पुनः कुछ सद्बोध दीजिये।

बुद्धदेव—"तीसरी बार भी तू प्रेमकी कसौटीमेंसे निष्फल हो

गया, नन्दा नामकी तेरी स्त्रीने कुछ भारी अपराध कर दिया। उसकी युवावस्था अथवा उसकी अज्ञानताका लेशमात्र भी विचार किये बिना ही, अथवा उसके ऊपर जरा-सी भी दया और उदारता दिखाये बिना तुमने उसे महलमे बाहर निकलवा दिया।"

भगवन! मैं उससे इसके अतिरिक्त और क्या बर्ताव कर सकता था? एक सदोष और चंचल स्वभावकी स्त्रीको अपने बराबर रखना, और उसकी अपेक्षा अपना और अपने महलका मान सुरक्षित रखना क्या यह मेरा आवश्यक कर्तव्य न था? अपनी स्त्रीके किये हुए अयोग्य बर्तावको जो मैं छिपा लेता तो मेरी देशनीतिके नियमोंका भंग किया न कहलायगा? मेरी शुद्ध जीवन सम्बन्धी उच्च भावनाके विरुद्ध क्या वह क्षन्तव्य है?

बुद्धदेव—अच्छा राजपुत्र! क्या मुझे पुनः तुझे यही उपदेश देना चाहिये? श्रेष्ठ और सद्गुणी कहलानेवाला सांसारिक मनुष्य अपने हक्कोंके सम्बन्धमें विचार करे, या अपनी मान कीर्ति बढ़ाये रखनेका प्रयत्न करे, वह अभिप्राय बांध सकता है, शिक्षा कर सकता है, और अयोग्य मनुष्यको अपनेसे अलग भी कर सकता है, परन्तु जो मेरा शिष्य बननेका अधिकार प्राप्त करना चाहता है, वह कदापि किसीका आशय सम्बन्धी अभिप्राय नहीं बांध सकता, वह प्रत्येक विषयके समझनेका प्रयत्न करता है, और क्षमा कर देता है, उस दोषके शोधनेका मन्थन नहीं कर सकता, उस दोषके अच्छे होनेकी ओर उसकी विशेष सतर्क दृष्टि रहती है, समुद्रके हृदयमें जितने जलबिन्दु हैं, उसकी अपेक्षा दया और अनुकम्पाके विशुद्ध

और विशेष बिन्दु उसके हृदयमें मालूम पड़ते हैं; शुद्धता यह कुछ सद्गुण नहीं है, वह तो अशुद्ध मार्गका निवृत्ति रूप है। मेरा शिष्य ऐसी निवृत्ति यानी शुद्धताको विशेष महत्व नहीं देता। जीवनकी शुद्धताके साथ यदि प्रेम और दयाका मिश्रण न हुआ हो तो वही शुद्धता, अभिमान और कठोरताका कारण हो पड़ता है, और एक मुमुक्षुके उन्नत मार्गमें बाधक हो जाती है. उस समय उसे शुद्धता न कहकर बल्कि शुद्धताकी छाया समझना चाहिये। पवित्र राजपुत्र! तुम अपने प्रवासके अन्दर सन्ध्या कालमें हिमालयके अनुपम पवित्र तथा ऊंचे शिखरोंकी ओर नजर डालते हुए आये हो. उन बर्फसे ढँके हुए शिखरोंपर प्रत्येक वस्तु ठंढी होकर निर्जीव भासती है, परन्तु एकदम वहां भिन्न-भिन्न प्रकारके चमकीले तथा भड़कीले रंग प्रगट हो जाते हैं, और चक्षु तथा हृदयको आनन्द पूर्वक लुभानेवाले प्रतीत होते हैं. इसीका नाम पवित्रता है और यही शुभतम शुद्धता है! प्रेम रहित पवित्रता मृत शरीरको ओढ़ाई हुई सफेद चद्दरसे अधिक विशेषता नहीं रखती। यदि उसके साथ प्रेम चमक उठे तो वही शुद्धताकी प्रणालिका द्वारा जीवनका प्रवाह चारों ओर सुन्दर ढंगसे बहने लगता है।

चन्द्रसिंहकी आंखोंमें आंसू भर आये, उत्तरमें एक भी शब्द न बोल सका, और उसी जगह गिर पड़ा, फिर उसने दबी आवाजसे गला मांजनेका प्रयत्न करते हुए यह कहा—

कृपालो! दीनबन्धो! मुझपर एक बार फिर विशेष कृपा करो, मुझे एक बार फिरसे प्रयत्न करने दें, योग्य अधिकारीके लिये

किन-किन गुणोंकी आवश्यकता है, वे कुछ अंशोंमें देव! आज मैं समझ पाया हूं। जहां तक मैं वापस न लौटूं वहां तक अपनी दयाका सूर्य प्रकाश मुझपर प्रकाशित रक्खें, मेरी इतनी ही विनती-को स्वीकार करें।

"मैं स्वीकार करता हूं" यह बुद्धदेवने कहकर बता दिया, और अपने पैरों तले पड़े हुए युवककी ओर ताककर देखा, उस समय उनकी दृष्टिसे इतना प्रेम प्रवाहित होकर प्रकाश स्फुरित हुआ कि अखिल कुंज एक ही क्षणमें जगमगा उठी। मानो प्रभात हो गया है, यह समझ कर रात्रिमें भी प्राणी, पक्षीगण सवेरेके जैसे मधुर गीत गाने लगे।

वह युवक वहांसे उठ खड़ा हुआ और अपने रिसालेमें जा मिला, और साथमें लाये हुए हाथीपर बैठकर अपने नगरकी ओर विदा हो गया, और फिर उसी कुंजमें जामुनके नीचे बुद्धदेव अत्यन्त समाधि मग्न हो गये।

* * * *

चन्द्रसिंह अपने नगरके सन्मुख आ पहुंचा, उस समय उसका पिता अत्यधिक रोगी हो चला था, इसीसे राज्यकी लगाम उसे अपने सुकुमार हाथोंमें थामनी पड़ गई। अपने सिर माथे आकर पड़ी हुई जोखमदारी बड़ी ही अच्छी तरह अन्तःकरण पूर्वक उसने निभानी शुरू की। दया और न्यायके लिये सब जगह प्रसिद्ध हो गया।

पहले तो उसने यक्ष और भल्लिकको अच्छे-अच्छे पुरस्कार

और अधिकार प्रदान किये, और पास-पासमें बने हुए दो भव्य महल उन दोनोंको दिये गये, उसने अपनी स्त्री नन्दाकी शोध कराकर पुनः राजगृहमें स्थापन कर दिया, जिससे लोगोंके दिल खट्टे पड़ गये। उसके पिताके समयके पुराने नौकरोंको बड़बड़ानेका समय मिल गया, और लोक उसके विषयमें झूठी-झूठी अफवाहें उड़ाने लगे। एक बार जागृत होकर शंकायें बढ़ने लगीं, और सारे शहरमें उसके कार्योंके लिये सहसा टीकायें होने लगीं, उसपर अत्याचारोंका अभियोग लगाये जाने लगा।

गुप्त आरोप उसपर लगानेपर भी चन्द्रसिंह जरा भी विचलित न हुआ। जिस प्रकार पहले गुलाबकी सुगन्ध ग्रहण की थी, उसी भांति अब कांटोंसे लगनेवाले वरोंटोंको भी उसने सहन किया, इतना ही नहीं बल्कि सत्ताके लोभी उसके छोटे भाईने उसकी राजगद्दीको पचा डालनेके हेतु एक गुप्त मंडल खड़ा कर दिया। पहले उसने मंडल द्वारा सारे नगरमें यह वातावरण फैला दिया कि—चन्द्रसिंह निरंकुश सत्ता जमाना चाहता है, उसकी सुधारक योजनायें होनेपर भी देशको ग्रहन कर डालेंगी। लोकोंको यह कहकर भ्रमणामें डाल दिया कि—इसमें एक भिक्षुका भी लगाव है, और वह पुराने रिवाजोंको जो कि वंश परम्परासे चले आ रहे हैं उन्हें मिटाकर अपने देशमें नवीन धर्म फैलाना चाहता है। इस प्रकार लोकोंको भड़का कर लोकोंका मन उसके विरुद्ध कर दिया।

एक दिन चन्द्रसिंहको यह खबर मिली कि—उसको मारने तकके लिये षड्यन्त्र रचा गया है, परन्तु उसे जरा-सी भी चिन्ता

न हुई, तथापि उसके विश्वस्त मित्रोंने उसे चेतावनी दे दी, उसके भाई-बन्धु और विश्वस्त मित्र इस विषयमें सावधान हो गये, और उसके द्वारा जब हाथमें खंजर सहित खूनी, चन्द्रसिंहपर आक्रमण करनेकी तैयारीमें था ठीक उसी समय वह पकड़ लिया गया, और उस खूनीका नाम आर्द्रक था, और वह जातिका क्षत्रिय था, वह भयसे त्रास पाकर एकदम फीका पड़ गया और उसे तुरन्त चन्द्र-सिंहके सन्मुख लाया गया।

"मुझे मारनेका मन तुझे किस प्रकार हुआ" राजाने यह पूछा, उसने उत्तरमें कहा कि—मैं तुझे देशके शत्रु और द्रोहीके रूपमें देखता हूं, तू हमारे पुराने रीति रिवाजोंके विरुद्ध चलता है, और हमारी पुरानी धार्मिक क्रियाओंको रद्दी करना चाहता है। हमारे देशके सुख और वैभवके प्रतिकूल सुधार करना मांगता है। इसी-लिये तुझे मारनेकी मेरी धारणा है।

चन्द्रसिंहने उसपर दयाकी दृष्टि डालकर मनमें यह विचारा कि यह खूनी एक निर्दोष पागलके समान है, उसने अपने सेवकोंसे कहा कि "याद रहे कि मुझपर इसने प्राणघातक हमला भी किया, तथापि इसका आशय शुद्ध ही था. सेवको! इस ओर आओ और इसकी बेड़ियां दूर कर दो।" उन सिपाहियोंको पहले आश्चर्य लगने पर भी तुरन्त राजाज्ञाका पालन किया गया।

इसके अनन्तर उसने आज्ञापूर्वक कहा कि—सेवको! "मुझे इस आर्द्रकके साथ कुछ क्षण इकला रहने दो" उसके मित्र और उसके सेवक अनिच्छासे पीछेकी ओर मुड़ मुड़कर देखते-देखते

हौलसे बाहर हो गये। वे राजकुमारके इस साहससे घबराये हुए भी थे।

सभ्यताको मिटाकर आर्द्रक तिरस्कारकी दृष्टिसे चन्द्रसिंहकी ओर देख रहा था, उसके इस तिरस्कार अथवा अपमान भरे बर्ताव की ओर उपेक्षा करता हुआ चन्द्रसिंह उसके पास गया और ताक कर उसको आंखोंके सामने देखने लगा। उसकी आंखोंमें तिरस्कार न था, एवं दया भी न थी, उसकी आंखे गुप्त होकर आर्द्रकके भावोंको जानना चाहती थीं। बुद्धदेवने कहा था कि—"मेरा शिष्य दोषको शोधनेके स्थानपर दोषके लिये कुछ बचावका कारण हो तो वह उसे विशेष शोध करता है।" चन्द्रसिंह उसके पूर्व जन्मके कार्योंको ढूंढ़ रहा था, सहसा उसे यह प्रतीत होने लगा कि मानो उसपर अद्भुत प्रभाव पड़ रहा है। जिसे वह एकान्तमें उसे अपने गुरुके रूपमें पहचानने लगा और उसका दिव्य आत्मा मानो उसमें प्रवेश करता हुआ भासने लगा, और वस्तुओंका छुपा रहस्य जानने लगा।"

उसने उस शूरवीर भूतकालको देखा, जिससे पूर्वकर्मों द्वारा वे दोनों एक दूसरेके साथ संकलके साथ बंधे हुए दीख पड़े, अज्ञानताके कारणसे होनेवाली अनेक भूल और स्खलनायें उसके दृष्टिगत पड़ने लगीं; अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली अलग-अलग इच्छायें और इच्छाओंका परिणाम स्वरूप उत्पन्न होनेवाला दुःखका सजीव चित्र उसकी आंखोंके आगे खिंच आया, उसकी आंखोंके आगेसे आर्द्रककी मूर्ति हट गई, और उसके स्थानपर अखिल मनुष्य जाति

उसमें जन्म पाती दीख पड़ी, मनुष्योंकी अज्ञानता और दुःख को देखकर उसे बड़ा खेद हो गया। उस खेदके साथ ही मानव बन्धुओंकी ओर दयाभावना उसकी हार्दिक भूमिमें खिल उठी, उस दुःखी जातिको अपने प्रेम पाशमें लेनेके लिये और उनका दुःख अपनी दिलसोज़ीसे यथाशक्य कम करनेके लिये उसमें मानसिक इच्छा प्रबल हो उठी, अपनी शुद्धतासे उसे शुद्ध करनेके लिये, अपने प्रेमसे उसे नव्यजीवन अर्पण करनेके लिये और अपने आत्मभोगसे उस मनुष्य जातिको एक कदम अगाड़ी करनेके लिये उसके मनमें उत्कट इच्छा व्याप्त हो गई।

स्वप्नसे पुनः लौटनेकी तरह वह उस भव्य दृश्यसे वापस आ गया, उत्तरमें क्या कहना चाहिये यह उसे कुछ भी न सूझा, तथापि टूटे फूटे शब्दोंमें इस प्रकार बोला—

भाई! मैं तुझे अपने भाईके अतिरिक्त और किसी तरह नहीं देख रहा हूं, तू मुझसे एक बार मिल भाई! और मैं जिस प्रकार तेरी अपकीर्तिमें भाग लेता हूं, इसी तरह तू मेरी कीर्तिमें भाग ले।

लंबे समय तक चलनेवाली शान्तिसे घबराये हुए सिपाही जब अन्दर आकर देखते हैं तब आर्द्रकको राजकुमारके कंधेपर रोते हुए और चन्द्रसिंहका मुख आनन्दसे भरपूर देखा।

* * * *

सूर्यके तेजसे प्रकाशित होकर जगमगा उठनेवाली कुंजमें बुद्धदेव समाधि मग्न थे, अपने प्यारे जामुनके वृक्षके नीचे वे पद्मासन जमा कर बैठे थे, उन्होंने सारी रात इसी तरह उनकी राह देखी थी,

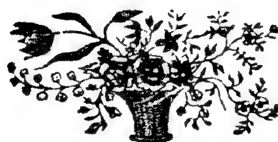
क्योंकि उसे अपने बचनका पालन करने अवश्य आना है। प्रथम प्रातःकालकी लाल ऊषा दीख पड़नेके अनन्तर प्रभात होने लगा। अन्तमें भूतलपर चारों ओर अपनी किरण फैलाते हुए सूर्य वृक्षोंकी टहनियोंमेंसे होकर प्रकाश करने लगा।

जामुनकी शाखाओंपर बैठकर बुद्धदेवके छोटे-छोटे पक्षी भक्तोंने प्रातःकालके मधुर और आनन्दप्रद गीत सुनाने आरम्भ कर दिये, हिरणी अपने बच्चोंके साथ वहां आ पहुंची, चीते और सिंहके बच्चे उनके पास खेलने लगे और प्यारमें आकर उनके पादारविन्द चाटने लगे। कारण उस कुँजमें बुद्धदेवके प्रेम-प्रवाहसे सब प्राणी अपना-अपना जन्म-जात और स्वाभाविक वैर भाव भुला बैठे थे।

इतनेमें कुछ खड़खड़ाहट-सी हुई, शायद किसीके आनेके पैरों-की आवाज मालूम देने लगी। वही चन्द्रसिंह दूसरे क्षणमें वहां आकर खड़ा हो गया। इस बार वह अकेला ही आया था। उसके सैनिक अबकी बार उसके साथ न थे, और उसने एक भिक्षुकका रूप धारण कर रक्खा था। वह आते ही जमीनपर नम गया. और गौतम बुद्धको साष्टांग नमस्कार किया। मार्गके श्रमसे थक जानेके कारण जब वह महा कष्टसे उठा, तब आशीर्वाद देनेवालेने अपना हाथ उसके मस्तकपर फिराकर बड़ी ही ममता भरी वाणीमें कृपालु देवने यह कहा कि—

प्यारे चन्द्रसिंह! मेरे पवित्र शिष्य! इधर आ, अब तू अधिकारी बन गया है।

चन्द्रसिंह बुद्धदेवके चरण कमलके आगे बैठकर धर्मका रहस्य समझने लगा। उस समय अपूर्व शान्ति फैल रही थी। उस समय जो समय बंधा था सचमुच देखने योग्य था। उस समयका आनन्द अवर्ण्य था। क्या कभी हमारा भी ऐसा भाग्य उघड़ेगा, जिस दिन कि हम भी ऐसे महात्माके पास बैठकर सत्य तत्वको समझ कर ग्रहण करेंगे।



आदर्श-जीवन

तीन सौ वर्ष पहले भारतमें अंग्रेजोंका सर्वव्यापी राज्य न था। जहां तहां भीमकाय कालेजोंकी बिल्डिंग नहीं खड़ी थीं और विद्यार्थी उस समय कोट, पटलून, बूट, चश्मा चुरुटके अभ्यासी भी न थे। उन दिनों जैसे काशी व्याकरणके लिये समस्त भारतमें विद्याका केन्द्र था, उसी प्रकार बंगालका नदिया प्रान्त न्याय शास्त्रके लिये अध्ययनका केन्द्र था। विद्यारण्य शर्म्मा तो नदियाके भूषण थे। वृद्धावस्थाके कारण उनके सब बाल पक गये थे। परन्तु नेत्रोंकी ज्योति ज्यों की त्यों थी। बस्तीके बाहर पत्रोंकी बनी हुई उनकी कुटी थी। उसीके निकट छप्परके नीचे चटाइयोंका फर्श था। वहींपर बैठकर सौ सवा सौ विद्यार्थी उनसे न्यायकी शिक्षा पाते थे। ये विद्यार्थी न जूता पहिनते थे न टोपी। एक साधारण खद्दरकी धोतीका परिच्छद होता था। इनमें बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्यार्थी थे। किसीसे फीस लेनेका नियम न था। प्रातःकालमें

नित्यकर्मसे निवट कर पण्डितजी विद्यार्थियोंके मध्यमें बैठते थे और दोपहर तक अगाध पाण्डित्यकी धारा विद्यार्थियोंमें बहाते थे। दोपहरके बाद विद्यार्थीगण बारी-बारीसे नगरमें जाकर कोई फल लाते थे, कोई आटा, दाल, चावल। पण्डितानी रसोई बनाती थीं, और सब विद्यार्थियों तथा पण्डितजीको भोजन कराकर बादमें स्वयं खाती थीं। यही उनका परिवार और ऐसा ही यह उनका जीवन था। एक दिन प्रातःकाल पण्डितानीजी स्नान करने गंगा तटपर गईं। वह स्नान करके ज्योंही घड़ेमें जल भरने चलीं उसी समय नदियाकी महारानी अपने सखियोंके साथ नहाने आईं। जब पण्डितानीजीने घड़ा भरनेके लिये जलको हाथसे हिलाया, तब एकाएक महारानी बेहोश होकर पानीमें डूबने लगीं। सखियें घबराकर उन्हें किनारेपर लाईं और होशमें लानेके अनेक उपाय होने लगे। परन्तु महारानीको चेत न हुआ। पण्डितानीजी भी घड़ा भरकर एक ओर रखकर उनकी सहायताके लिये चलीं। उन्हें देखकर एक सखीने कहा कि—सब उपद्रव इसी अभागिनीका उठाया हुआ है। इसने इतने जोरसे जल हिलाया कि—महारानी मूर्च्छित हो गईं। दूसरीने कहा कि—इसके तनपर एक मैली-सी धोती है तिसपर भी इसको इतना गर्व है कि—महारानीको देखकर तनिक भी न डरीं। जो रेशमी वस्त्र होते तो न जाने पृथ्वीपर पर भी रखती या नहीं। पण्डितानीजीने उत्तर दिया—देवियो! मुझे व्यर्थमें क्यों दोष देती हो। मैं तो बहुत दूर पानी भर रही थी। पर यह सत्य है कि मेरे तनपर मैली-सी खद्दरकी धोती अवश्य है और तुम्हारी रानीके

शरीरपर लाखों रुपयेके हीरे-मोतीके आभूषण हैं। बहुत बढ़िया रेशमी वस्त्र हैं। परन्तु तुम्हारी रानीके गहने यदि उतार दिये जायँ तो नदियाकी कुछ हानि न होगी। परन्तु जिस दिन मेरी यह मैली-सी खद्दरकी धोती उतर जायगी, उस दिन नदियामें अन्धकार मच जायगा। पण्डितानीजी सतेज स्वरसे यह कहकर चल दीं।

इतनी तीव्र बात सुनते ही रानीकी मूर्च्छा जाती रही और महलमें आकर कोप भवनमें पड़ रही।

राजाने आकर कारण पूछा तब रानीने कहा कि वह दरिद्र ब्राह्मणी मेरा अपमान कर गई है। उसे अवश्य दंड मिलना चाहिये। राजाने कहा कि—पण्डितानीजीने सत्य ही कहा है। मैं आज मर जाऊं तो मेरे स्थानपर कई अन्य राजा हो सकते हैं। परन्तु जिस दिन पण्डितजी न रहेंगे उस दिन नदियामें अवश्य अन्धकार हो जायगा। ये पण्डितजी नदिया प्रान्तके सूर्य हैं। परन्तु रानी न मानीं, उसने कहा कि—किसी तरह उसे लालच देकर तथा वैभव दिखाकर वशीभूत करना चाहिये। उस दरिद्राको खद्दरसे इतना प्रेम !

राजाने कहा—प्रिये ! शान्त हो, मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगा जिससे पण्डितानीजीका अभिमान दूर हो।

* * * *

प्रातःकालका समय था, पंडितजी अपनी पर्णकुटीमें बैठे-बैठे न्याय पढ़ा रहे थे। विद्यार्थी नतमस्तकसे शान्ति-पूर्वक प्रवचन सुन रहे थे। एकाएक राजाने पहुंच कर प्रणाम किया। पण्डितजीने बैठ

ही बैठे उन्हें चटाईपर एक ओर बैठनेका संकेत किया। कुछ देर बाद विद्यार्थियोंसे निवृत्त होकर राजासे कुशल और आनेका कारण पूछा।

राजाने हाथ जोड़कर कहा कि—महाराज! आप मेरे राज्यके भूषण और नदियाके सूर्य हैं। मैं आपको प्रणाम करने तथा यह पूछने आया हूं कि मेरे योग्य कुछ सेवा बताकर कृतार्थ करें।

पण्डितजीने कहा कि—हम तो स्वयं ही अपनी सेवा कर लेते हैं। हमें तो किसी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। पर तुम यथावत् प्रजा पालन करो।

राजाने कहा कि किसी वस्तुका अभाव हो तो आज्ञा दीजिये। पण्डितजी बोले—न्यायकी टीकामें कुछ अभाव था, वह कल रातको हमने पूर्ण कर लिया है। अब कुछ अभाव नहीं है।

राजा बोला कि मैं तो गृह सम्बन्धी सामग्रीका अभाव पूछता हूं। पण्डितजीने कहा गृह सम्बन्धी बात मुझे मालूम नहीं। यह पण्डितानीजीसे भीतर जाकर पूछो। राजा अन्दर गया और पण्डितानीजीको दण्डवत करके कहा कि माता! इस देशका राजा आपको प्रणाम करके यह प्रार्थना करता है कि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो आज्ञा कीजियेगा।

पण्डितानीने कहा, दो तीन दिनसे मुझे एक धोतीकी आवश्यकता थी, अतः मैंने सूत कातकर जुलाहेको दे दिया था, जुलाहेने धोती बुनकर ला दी है। मैंने बदल ली है। अब मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। राजा हारकर लौट आया।

* * * *

कई मास व्यतीत होनेके पश्चात् पण्डितानीजीके लिये महलोंसे भोजनका निमंत्रण आया जिसे पण्डितानीने स्वीकार कर लिया। रानी प्रसन्न हुई। उसने समझा कि—इस बार उसे लालचमें अवश्य फँसाऊंगी, और अपना ऐश्वर्य दिखलाकर उसे लज्जित करूंगी।

पण्डितानीजीके लिये स्वर्ण खचित पालकी भेजी गई। राज-महलकी ड्योढ़ीपर महारानी स्वयं अगवानी करने आई, और बड़े आदरसे अन्दर ले गई। पण्डितानीजीको स्नान कराया गया। उसके बाद बहुमूल्य रत्न जड़ित आभूषण पहनाये। पण्डितानीजीने चुपचाप विना आनाकानी किये सब पहन लिये। फिर चन्दनकी चौकीपर बिठलाकर अनेक प्रकारके भोजन और व्यंजन परोसे, दासियां पंखा करने लगीं। भोजन समाप्त हुआ। पण्डितानीजीने मुस्कुराकर रानीसे कहा कि तुम अब प्रसन्न तो हो। पण्डितानीजीसे रानीने कहा कि—आज हमारा अहोभाग्य जो इस तरह आप यहां पधारीं।

पण्डितानीजीने कहा कि—अच्छा अब तो मैं जाती हूं। मेरे सब बच्चे भूखे होंगे! यह कह कर उन्होंने एक एक करके सब वस्त्र अलंकार उतारने शुरू कर दिये। रानीने कहा हैं! हैं! यह आप क्या करती हैं? यह सब अलंकार तो आपके हो चुके! इन्हें पहने रहिये। पण्डितानीजीने हंसकर कहा बेटी! इनका मुझे क्या करना है! मेरे तनकी यह मैले खद्दरकी धोती सही सलामत रहे। मुझे और किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं, और फटी धोती पहनकर

पैदल ही अपनी कुटीकी ओर चल दीं। आज रानीने समझा है कि सफल जीवन वही है, जिसका आदर्श उच्च हो। उन्हें सम्मानके लालचसे इधर उधर नहीं किया जा सकता।

—सुमित्त भिक्खु



आदर्श-भिक्षु

सेवा जितना उच्च कोटिका धर्म है, उतना ही कठिन भी है। इसे पूरा पड़नेमें योगी जनोंको भी कभी कभी आगा पीछा देखना पड़ता है। परन्तु जहांतक इस जूयेके नीचे कंधा न आयगा वहां तक वह कुछ भी नहीं। यदि किसीको आदर्श पुरुष बनना है तो उसे सर्वप्रथम इस भक्ति योगमें ही लगना चाहिये। यदि संसारमें अमर कीर्ति छोड़ जानेकी अभिलाषा है तो आजसे सेवकोंके रजिस्टरमें नाम लिखाये। तब संसार उसे फिर सबसे महान समझने लगेगा। यह निस्सन्देह है कि सच्चे दिलसे की हुई सेवासे वह व्यक्ति इन्द्र द्वारा भी प्रशंसित होता है। आओ हम आज इसीका पाठ पढ़नेके लिये एक आदर्श भिक्षुका उत्तम चरित्र पढ़कर उसे विचारें।

* * * *

वह शहर था, इसके बाजार मनोहर और सुन्दर थे। बाजारू भीड़में चलते समय कंधेसे कंधा छिलता था। उसमें धनाढ्योंकी बड़ी-

बड़ी कोठियां थी। व्यापारका वह केन्द्र समझा जाता था। नाम बाराणसी था। हजारों नागरिक सई सबेरे उपाश्रयमें आने लगते थे। नन्दीषेण भिक्षु उन्हें धर्मकी व्याख्या करके सुनाते थे। व्याख्यानके समय श्रोताओंमें कोलाहल न होता था। कारण उपाश्रय बस्तीसे बहुत दूर था, और सुननेवालोंमें सरोता—सोता न होकर मात्र श्रोताजन होकर ही वहां पहुचते थे। स्थान बस्तीसे बाहर होनेके कारण मुनिजन आरामसे निर्विघ्नतया स्वाध्याय-ध्यान और कायोत्सर्ग करते थे। ये नन्दीषेण मुनि श्रोताओंमें योगाभ्यासका उपदेश खूब ही करते थे। क्योंकि तपस्वीके अतिरिक्त ये असीम विद्वान भी थे। आप महीने-महीने तक तप किया करते थे, महीना पूरा होनेपर बस एक बार आहार लेने बस्तीमें आते। इनके सहनशीलता-सेवा आदि गुण सोनेमें सुगन्धका काम करते थे। ये सब मुनियोंकी सेवा अभेद रूपसे किया करते। जिससे सब नगर निवासी जनोंको उचित समयपर यह अनुकरणीय, पवित्र, पाठ मिला हुआ था। इसीसे बस्तीके मनुष्य-मात्रमें साम्यताका पोषक गुण समाया हुआ था। वे गरीब और छोटोंको अपने समान बनानेमें कभी नहीं चूकते थे। इसी कारण यहां किसीका कोई बैरी न था।

सब लोग सुबहसे शामतक तन तोड़ परिश्रम करके अपना जीवन निर्वाह चलाते थे। इसीलिये वहां पुलिश और कचहरीके कर्मचारी आनन्दमें बैठे रहते थे। कोई छठे छमास ही आरोपी आता था। यह सब मुनिके ज्ञान और तपोबलका माहात्म्य था, और वह प्रेम

मनुष्योंतक ही सीमित न रहकर धीरे-धीरे पशु संसार तकमें भी पहुंच चुका था।

* * * *

बैशाख ज्येष्ठकी गर्मी कितनी दुःसह्य होती है। लूसे तपकर वनके पशु जलाशयका पानी पीकर बड़की छायामें आ बैठे हैं। आनन्द और प्रेम इनका विश्राम है। जीव-जन्तुओंके सब ही प्रकार हैं। सिंह, चीता, शूअर, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि। वृक्षके ऊपर मोर, बाज, तोता, शिकरा आदि अनेक पक्षी भी पास-पास ही बैठे किलोल कर रहे हैं और ये कभी-कभी स्वाध्यायकी धुन सुनकर मस्त हो जाते हैं। आज यह सभा अपना आदर्श खड़ा कर चुकी है। क्योंकि इन सबका मन इस समय पवित्र है। पशु होकर भी पाशविक गुण भुलाये हुए हैं। किसीको किसीसे द्वेष नहीं है। जो बात मनुष्योंमें होनी चाहिये थी वही पशुओंमें पाई जाती है। सबने एक तालाबसे पानी पीकर मानो छूत-छातका मसला उड़ा दिया है। पास-पास बैठकर भ्रातृभाव पैदा कर दिया है। वाह मुनिराज धन्य! तूने पशुओंमें भी प्रेम और अहिंसाका भाव भर दिया। बलिहारी तेरे आत्म-बलपर, कुर्बान जाऊं तेरे पवित्र तपस्तेजपर।

आज भारतको ऐसे ही मुनिओंकी आवश्यकता है, चाहे वह एक ही क्यों न हो, मगर सम्प्रदायोंकी ओटमें जनताको लड़ाकर मारनेवाले २००० मुनि भी निरर्थक हैं, भूमिके लिये भार रूप हैं।

औरोंको सुख चैन और छायाका आनन्द देनेवाला वृक्ष भी उन निरर्थकोंसे अच्छा है।

× × × ×

तीसरा पहर बीतने लगा है। आज मुनिके मासोपवासका पारणक दिन है। मुनिने अपना एक पात्र संभाला, प्रतिलेखन करके झोलीमें रख लिया। मुखवस्त्रिकाको खोल कर फिरसे मुखपर धारण किया, अपना एक वस्त्र भी ठीकसे पहन लिया। यत्न पूर्वक ३॥ हाथ पृथ्वी आगे चलते वक्त देख देखकर पदपद्धति रखते हैं। इस प्रकार पुरीमें प्रवेश करनेको ही थे कि—एक और मुनिने आकर उन्हें पीछेसे यह सूचना दी कि—तपस्विन! एक रोगी मुनि जंगलमें अतिसारके रोगसे बेहोश पड़ा है। उसे आपकी सेवाकी बड़ी आवश्यकता है, और यदि अभी ही जाकर उसे ले आवें तो बड़ी कृपा होगी। यह सुनते ही नन्दीषेण अनगार बस्तीमें न जाकर उस जंगलकी ओर चले गये। जाकर देखा तो सचमुच उनको हैज़ा हो गया है।

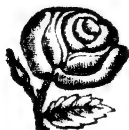
उन्हें ज़रा-ज़रासी देरमें दस्त और वमन होता है। उनके शरीरकी दशा बड़ी ही दयनीय हो चली है। इस संयमीने उसको पीठपर चढ़ा लिया और नगरकी ओर लाने लगे। बाजारके ऐन बीचमें रोगी मुनिको इतने दस्त और वमन हुए कि तपस्वीका समस्त शरीर गन्दगीसे भर गया। मगर धन्य सेवक मुनि नूने नाक तक न चढ़ाया। बल्कि यह विचार आने लगा कि—मेरे चलनेके कारण इनके शरीरको भारी धमक पहुंचती होगी, इसीसे

कष्ट बढ़ा जा रहा है। अभी वैद्यके यहां ले जाकर चिकित्सा कराऊंगा।

* * * *

नगर निवासियोंकी आंखें चौंधिया गईं। यह चमक बिजलीसे भी अधिक थी। न रोगी है न मुनि है, न दस्त और बमनका कोई दाग है। वहां तो चन्दनकी सुगन्ध आती है। फूलोंकी-सी महक फैल गई है। एक देव मुस्कुरा रहा है और हाथ बांधे हुए है तथा सरे बाजार मुक्तकंठसे प्रशंसा कर रहा है और उच्च स्वरमें मुनिकी पुनः पुनः प्रशंसा करता हुआ बता रहा है कि इस मुनिके सेवा धर्मकी प्रशंसा स्वर्ग तक फैल गई है। इन्द्र स्वयं इनका गुण-गान करता हुआ नहीं थकता। मगर मुझे निश्चय न होनेके कारण परीक्षा लेने आया था। मैंने खूब ही कसौटी की और कसौटी करते-करते थक गया तब मुझे विश्वास हो गया कि इनके मनमें सम्प्रदाय भेद नहीं है, सेवा-भाव है। इनकी अपूर्व सेवा-सहनशीलतासे आधुनिक मुनि-जगत कुछ पाठ सीखेगा।

—सुमित्त भिक्खु।



सेवा-बुद्धि

एक ही मनुष्य अनेक आश्चर्य-जनक कार्य कर सकता है। इसका पुष्ट प्रमाण यह है कि—हाथ और पेटके बीचमें जितनी गहरी सगाई है, उतना ही निकट सम्बन्ध संसारके प्रत्येक मनुष्यका सबसे गहरा सम्बन्ध है।

हाथ कमाता है, पेट उस कमाईका संग्रह कर छोड़ता है, और हौजरी द्वारा उसका लहू बनवाकर प्रत्येक अंग तक उसे पहुंचाता है।

हाथ पेटका सेवक है, पेट हाथका दासत्व करनेवाला है, इन दोनोंमें परस्पर कोई किसीका सेठ या अन्नदाता प्रभु नहीं है। दोनोंमें समान सेवा बुद्धि है, और यह सेवा बुद्धि दोनोंकी अपनी निजी वृद्धिके साथ-साथ औरोंके लाभके कामोंमें भी प्रेरक है।

दुनियामें न तो कोई सेठ है, न कोई मात्र पूज्य पदके अधिकार-का कमानेवाला ही है। बल्कि सच पूछो तो सबके सब एक प्रकारसे सेवक हैं, और एक ही संकलमें अलग-अलग कुंडे बनकर आपसमें जुड़े हुए हैं, और सब अलग-अलग रहकर भी एक हैं।

राजा न्यायाधीश, पुलिस धर्मगुरु आदि सबके सब 'सेव्य' समझे जानेवाले सामान्यतः व्यक्ति वास्तवमें समाजके सेवक ही हैं। यदि सच पूछा जाय तो प्रजा-समूह जितनी उनकी सेवा करनेमें वंधा हुआ है, उनकी अपेक्षा वे भी प्रजाकी अधिकाधिक सेवामें बंधे हुए हैं।

जो अधिकारी, सेठ; और धर्मगुरु लोकोंके पाससे सेवा करानेका अपना हक मांगते हैं, अपनी पूजा करानेका अधिकार सर्वव्यापक बनाया चाहते हैं, वे 'समाज-शास्त्र' और आपलेके ईश्वरीय नियमसे अपरिचित बालकके समान हैं, और वे चाहे जितना पाश्चिमात्य ज्ञान या पूर्व-शास्त्रका ज्ञान रट चुके हैं। तथापि वे 'बाल-जीवन' हैं। क्योंकि समाज रूपी संकलके कुंडे बनकर रहनेमें उनको 'आनन्द' माननेका खयाल भी नहीं आ सका है। पेट और हाथके बीचका स्वाभाविक सम्बन्ध जबतक वे नहीं समझ पाते तब तक उन्हें निरा अबोध ही कहना चाहिये। आह! बेचारे मूंछें होनेपर भी निरे बालक ही हैं!

एक बार फिर कहूंगा कि —यह बात सदैव हजारों बार समष्टि रूपसे स्मरण करानी चाहिये कि—संसारमें कोई किसीपर उपकार करता ही नहीं है, यद्यपि औरोंके मनको चाहे उपकार दीख पड़ता है परन्तु उस कामके करनेवाला तो अपनेको और अन्य मनुष्योंको एक संकलका सामान्य कुंडा-सा ही समझ रहा है, और इसीसे उसे 'मैं' यह उपकार करता हूं, ऐसा विचार तक भी नहीं आता।

क्या पेट 'स्वयं' को अन्न देनेके नाते हाथका उपकार मानता है ? तब क्या वह उसके पैरों पड़ता है ? तिक्खुतोका पाठ पढ़कर क्या उसकी वन्दना करता है ? और तब तक क्या हाथ अपने लिये मिलनेवाले रुधिरके द्वारा पोषणा पानेके सम्बन्धमें पेटके गीत रचने बैठता है ?

यह राजा और किसान, जौहरी और झाड़ू देनेवाला, साधु और कैदी, विद्वान् और मूर्ख ये सब समान और उपयोगी मालाके मणकेके समान हैं। विश्वके सितारके एकसे आवश्यक तार हैं। उस जगत् रूप सितारमें एक तार भी निकम्मा नहीं है। एक भी तार दूसरे तारसे अधिक मूल्यवान् नहीं है। प्रत्येक तारको अमुक और विशेष स्वर-शब्द सौंपा गया है, और वह आवाज उस तारके अतिरिक्त किसी अन्य तारसे नहीं निकल सकती। प्रत्येक तारकी अलग-अलग आवाज एक स्वरका गायन उत्पन्न करता है। जो कि मनुष्यको क्षण भरके लिये दिव्य प्रदेशमें खींच लेनेकी शक्ति रखता है।

* * * *

ओ ! 'अहंपद' के कीचड़में फँसकर आनन्द माननेवाले मुछैले बालको ! छोड़ो छोड़ो इस कीचड़के खेलको छोड़ो ! चौदह राजु लोक (१४ ब्रह्माण्ड) तुममें समाये हुए हैं, और तुम ऐसे महापुरुष हो, उसे याद करो ! तुम्हारी संकलके कुंड़े यदि घिस गये होंगे तो तुम अवश्य टूट जाओगे, खोये जाओगे, बह जाओगे। हाथ टूटे हुए होंगे तो पेटको भूखा रहना होगा, और पेटकी अप्रसन्नता

(अजीर्णता) से हाथ पैर आदि सब अंग दुर्बल हो जायंगे। इसी विचारको अपने मस्तकमें आने दो, और आप उपकार करनेवाले हैं या पूज्य हैं, अथवा अधिकारी हैं ऐसा दुराग्रह छोड़ दो, इसके स्थानपर सेवक बननेका पाठ सीखो। एक-दो के नहीं बल्कि सारे मानव समाजके तथा पशु संसारके तुम 'सेवक' हो, और जितनी सेवा कर सको थोड़ा है। तथा जितनी सेवा करोगे, वह आपके निजके लिये ही लाभदायक है। यह ठीक ही समझो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

जो 'उपकार' के लिये नहीं बल्के सेवा-बुद्धिसे, प्रेम-भावसे कुछ दान या उपदेश तथा किसी प्रकारका प्रकर्ष-पारमार्थिक कार्य करता है। उसमें एक प्रकारसे विलक्षण बलका प्रवेश हो जाता है कि जिस बलसे वे असाधारण चमत्कार जैसे काम भी कर सकते हैं।

यदि तत्व दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक आत्मामें अनन्त वीर्य, अनन्त शक्ति है, मगर वह 'अहं' के ढक्कनसे ढांप दी गई है, जिससे अब वह कैदमें है। अतः अब जो मनुष्य अपनी अनन्त शक्तिको उघाड़नेके लिये 'अहंपद' के ढक्कनको दूर कर सकता है, उसकी अनादिकालसे स्वयं प्राप्त पर छिपी हुई शक्ति 'प्रगट' हो जाती है।

जितने अधिक प्रमाणमें मनुष्य निजको समाजरूप सितारका तार माननेकी भावनाको हृदयमें बनाये रखता है, जितने प्रमाणमें मनुष्य पेट और हाथके सम्बन्धको समझकर 'सेव्य' पदके स्थानमें 'सेवक' पदके लेनेमें ही आनन्द और मान समझ लेता है, जितने प्रमाणमें मनुष्य सबसे एकताका अनुभव रखता है, उतने ही प्रमाणमें

वह मनुष्य परमात्माके साथ एकताका अनुभव कर सकता है, और उतने ही प्रमाणमें आत्माकी परम शक्तियें उसके स्थूल देहमें भी व्यक्त हो जाती हैं, और पूरे-पूरे अंशमें प्रगट हो जाती हैं। तथा उसके हाथसे आश्चर्यमें डालनेवाले ऐसे बड़े-बड़े महाभारत कार्य अनायासमें ही सिद्ध हो जाते हैं।

* * * *

आज इस देशको और खासकर जैन समाजको पूजा प्रतिष्ठा रखनेवाले सेठ और साधुओंकी जितनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि समाज सेवकोंकी आवश्यकता है। जगतकी सेवाके लिये द्रव्य और शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता है, इसके लिये उसकी यह धारणा होनी चाहिये कि—मैं गृहस्थ अवस्थामें रहकर उन दोनों साधनों द्वारा सेवा करूंगा? ऐसे विचारके घरबारी-सेवक तथा आन्तरिक संकोच और प्रमादको त्यागकर विचारके सुन्दर वातावरणकी अत्यधिक अनुकूलता पैदा करता हुआ, जगत-की सेवाके मार्गको खोजकर, निष्कंचन आश्रमकी ओरके लोगोंका बहुमान लाभ लेकर इस पथपर लोगोंको अधिकसे अधिक विजय दिला सकूं, इसीलिये मुझे 'त्याग' ही आदरणीय है इस विचारके सच्चे त्यागी, इन दोनोंको हम सचमुच उच्च श्रेणीके 'समाज-सेवक' कहेंगे। हमारे हाथ इनको अंजलिके रूपमें चाहे प्रणाम और नमन न कर सकें परन्तु अपना हृदय सदैव इनके सामने झुकता ही रहेगा।

बदलते रहो !

लेखके ३-४ पृष्ठ लिखनेके पश्चात् जब पेंसिल घिस गई तब मैंने कलमतराशसे उसे पुनः तीक्ष्ण बनानेके लिये निश्चय किया और उसे कागजके ऊपरसे उठाकर कलमतराशके छिद्रको अर्पण कर दिया। एक मिनटके अनन्तर जब उसे बाहर निकाला और देखा तो क्रोधकी मारी लाल-पीली हो गई है। उसे कागजपर जब चलनेके लिये इशारा किया तो वह उसमें ही घुसकर रह गई, और जब जरा तेजी दिखलाई तो कागजमें छेद कर डाला। मैं भी तुरन्त ताड़ गया कि मूक और निर्जीव वस्तु भी जब हठपर आ जाती है तब वह भी इस प्रकार विरोध (Protest) किया करती है।

*　　*　　*　　*

मैंने उसे नीचे छोड़ दिया और अपना हाथ पिछली ओरको खींच लिया। उसके मुँहसे क्रोध इस प्रकार बरस रहा था मानो ज्वालामुखीसे कोई अग्निज्वाला निकल रही है। यदि इस क्रोधका

कोई पौद्गलिक परिणाम होता तो कागज ही क्या मेरा पुस्तक, कलम, चौकी आदि सारा ही सामान नष्ट हो गया होता।

* * * *

मैंने कहा आखिर इतना क्रोध क्यों ? इस अप्रसन्नताका कुछ कारण ? पेन्सिलने कहा कि—पहले आप यह बतायें कि—जो बर्ताव मुझसे करते हो वह अपने आपसे क्यों नहीं करते ? मैंने पूछा कौनसा बर्ताव ? उसने कहा, जब मैं घिस जाती हूं, आप मुझे तराशकर फिर कामके योग्य बना लेते हैं। अर्थात् आवश्यकतानुसार मेरी आकृतिको बदलते रहते हो। परन्तु आपकी निजी अवस्था यह है कि—सैकड़ों शताब्दियोंके पुराने विचारोंमें घिरे पड़े हैं। आवश्यकता आपको पुकार-पुकारकर विवश कर रही है कि अपनी धुनकी पुरानी आकृतिको बदलिये। परन्तु एक आप ही हैं कि इस कानसे सुनकर उस कानसे निकाल देते हो, मैंने बातें जो सुनीं तो पता लगा कि उसमें भार था, युक्ति थी, भविष्यका परिणाम था कुछ सोचने लगा था कि—पेंसिलने फिर कहा कि जब तक आप अपने उन पुराने विचारोंको काट छांटकर उनको नवीन रूप न दोगे तब तक मैं लिखनेकी नहीं। मैं हैरान, आश्चर्य, चकित हूं कि—ओह ! कुदरत ! मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त !

